कुत्ते की दुम

डॉ० र० श० केलकर

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक—२४७
सम्पादक एवं नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन



Lokodaya Series : Title No 247

KUTTE KEE DUM
(Satirical Personal Essays)
Dr. R S KELKAR

Bharatiya Jnanpith
Publication

First Edition 1967

Price Rs 3.00



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता—२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी—५
विक्रय-केन्द्र
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रथम संस्करण १९६७
मूल्य ३.००

सन्मति मुद्रणालय,
वाराणसी—५

अपने उन मित्रो को –
जिनसे मुझे इन शब्द-चित्रो
को लिखने की
प्रेरणा मिली

भूमिकाकी भूमिका

भूमिका लिखनेका यह जो आजकल फैशन-सा चल चल पडा है उसके बारेमें नये सिरेसे विचार करनेके लिए मै उस दिन मजबूर हुआ जिस दिन अपने व्यंग्य लेखोका सकलन छपवानेका भूत मेरे हितैषी मित्र कल्पना-विभूषणने अपने अनेक अनोखे विचारोंके साथ गरम आलूकी टिकिया खाते-खाते मुझपर सवार कर दिया और इस भूतने मुझे ऐसा पकडा कि सामने आलूकी टिकियासे निकलनेवाली भाफमें मुझे अपने संकलनकी बिकी-अनबिकी सभी प्रतियाँ एक साथ दिखाई देने लगी। टिकियासे ढुलकी हरी चटनीमें मैने यह भी देखा कि मै मुँहसे थूक उडाता अपने संकलनके बारेमे संवाददाताओके सम्मुख सिद्धहस्त लेखकके अन्दाज़से वक्तव्य दे रहा हूँ। क्योकि अपने वर्सेटाइल लेखक-मित्रकी दृष्टिमें सैकडों पन्ने हिन्दीकी प्रमुख पत्रिकाओमें लिख डालनेके बाद भी मै हिन्दीका लेखक तबतक नही माना जा सकता था जबतक मेरी अपनी एक पुस्तक न प्रकाशित हुई हो। दूसरे शब्दोमें वे यह मानते थे कि हिन्दीमें एक पुस्तक लिखनेसे व्यक्ति लेखक बन जाता है। फिर वह पुस्तक अपने नाम दूसरेकी होनेसे भी काम चल जाता है। संकलनका विचार मनमें दृढ होते ही भूमिकाकी आवश्यकता और अधिक प्रतीत होने लगी। क्योकि आजके युगमें पुस्तकके लिए भूमिका उतनी ही आवश्यक बन गयी है जितनी 'सोशल-लाइफ' में कामयाबीके लिए खूबसूरत बीवी। मै नही समझता कि पुस्तकके लिए भूमिका ऐसी जरूरी क्यों बन बैठी है। लेखक

जो कुछ लिखता है वह पाठकके सामने होता है और वह उसका साहित्यिक मूल्य स्वयं निर्धारित कर सकता है फिर यह विज्ञापन क्यों ? लेखकका यदि कोई विशिष्ट दृष्टिकोण रहा है तो उसके स्पष्टीकरणकी आवश्यकता क्यों होती है ? यदि भूमिका लिखने या लिखवानेका हेतु अपने लेखनका विज्ञापन करना है तो मैं उसे लेखनकी कमज़ोरी समझता हूँ। पर साहित्यिक संसार मेरे समझानेसे तो समझेगा नही। यदि समझता होता तो मेरे प्रयोगवादी मित्र पुस्तकका पहला पृष्ठ तीन चिह्न लगाकर ही क्यों छोड देते, जैसे उन तीन प्रश्न-चिह्नोमें उनकी अभिव्यक्तिके तीनो 'जैण्डर' समाविष्ट हो।

भूमिकाकी परम्पराके निर्वाहके लिए जरूरी हो गया है कि मै उसके उद्‌गम, विकास और स्वरूपपर गहराईसे विचार करता और पाठकोको अपने पाण्डित्यसे आतकित करता। हिन्दी कोशमें 'भूमिका' शब्दका अर्थ यो दिया गया है – "किसी ग्रन्थके आरम्भका वह वक्तव्य जिससे उस ग्रन्थकी ज्ञातव्य वातोका पता चले।" इससे पता चलता है कि भूमिका भूमि-सी ही प्राचीन है। अतएव आदिकविने अवश्य अपने प्रथम छन्दकी रचनाके वाद अपने भावको खोलकर दिखानेके लिए एक अच्छी-खासी भूमिका वाँधी होगी, और यदि न वाँधी होगी तो उसे यकीन होगा कि उसके प्रथम छन्दमें कोई भी ज्ञातव्य वात नही है वरन् वह केवल अनुभूति-का विपय है। आदिकविसे लेकर ईलियटी सम्प्रदायके वायवी कवियो तक पहुँचते-पहुँचते भूमिकाका काफी कायापलट हुआ है। अपनी वात प्राक्क-थन, आमुख, परिचय, प्रस्तावना, दो शब्द आदि भूमिकाके ही अनेक रूप है जिनके द्वारा अज्ञातव्य वातोको ज्ञातव्य वनानेकी सफल-असफल चेष्टा की जाती है और 'दो शब्द' वीस-पच्चीस पृष्ठोको आत्मसात् करनेके वाद भी 'दो शब्द' ही वने रहते है !

हाँ, तो अनेक पुस्तकोकी भूमिकाएँ पढ जानेके वाद मैं सोचता रहा कि भूमिका मैं लिखूँ या किसी आचार्य, डॉक्टर या साहित्य-शास्त्रीजीसे लिखवाऊँ। सच देखा जाये तो मेरे संकलनके लिए भूमिका अत्यन्त

आवश्यक थी क्योकि संकलनके सभी लेख व्यंग्य-प्रधान विनोदी लेख थे और इसलिए वे सब हास्यके अन्तर्गत आनेके कारण मेरे उदासी लेखक-मित्र और उदीयमान आलोचक डॉ० अनोखेलाल शर्मा उन्हे रचनात्मक साहित्य नहीं मानते थे। उनका कहना था कि उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता और दुरूह साहित्यिक निवन्ध ही 'रचनात्मक' साहित्यके अन्तर्गत आते है और इसीलिए 'फिल्मी गानोंमें शृंगारकी परम्पराका निर्वाह तथा जयदेवका फिल्मी गानोपर प्रभाव' विषयपर अपने प्रबन्धको वे रचनात्मक साहित्यका अमूल्य ग्रन्थ मानते थे। जो हो, मुझे उससे बहस नही। मैं तो भूमिका-द्वारा अपने आलोचकोका ध्यान बचपनकी उन गुदगुदानेवाली चुटकियो या चुभनेवाले तानोकी ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ जो उनका कैरियर बनानेके लिए मुख्य रूपसे उत्तरदायी रहे है। यदि अपनी ही बात कहूँ तो मै हरगिज़ मैट्रिक पास न कर सकता यदि खोमचा लगानेसे मुझे सख्त नफरत न होती। मुझे दिन-भर पतंगबाज़ी करते हुए देखकर एक बार मेरे पिताजीने हताश होकर कहा था – "तू तो खोमचा लगायेगा।" यह दूसरी बात है कि आज खोमचा लगाना भी आदरणीय समझा जाने लगा है – जैसे सिनेमामें काम करना। परन्तु उस समय इस छोटे-से वाक्यने तो मेरे जीवनकी दिशा ही बदल डाली थी।

तो जनाब, भूमिका लिखवानेके चक्करमें मैने अनेक साहित्यिक देवताओकी उपासना की, अनेक दिग्गजोकी स्तुति की और अनेक महारथियोकी 'पत्र पुष्पं फल तोय' के रूपमें अनेक छोटी-बडी सेवाएँ की तब कही एक स्वयम्भू कनफटे महात्मा प्रसन्न हुए और उन्होने पाण्डुलिपि अपने पास रख ली। एक वर्ष उन्हें मुझे यह बतानेके लिए लगा कि मेरे लेखोंमें पत्नीवाद काफी आ गया है। उस वादको यदि मैं निकाल दूँ तो ठीक रहेगा क्योंकि पत्नीवाद काफी पुराना हो गया है। मैंने कहा – ऐसा गज़ब न कीजिए, पत्नीसे ही मुझे प्रेरणा मिलती है और पत्नीवाद या पत्नी पुरानी लगनेसे हम उसे छोड थोड़े ही देते है। परिधान बदलते

रहते हैं पर पत्नी नही बदलती। और आप बदलनेकी सोचें भी तो हिन्दू कोड बिल आपसे बदला लेगा। पर वे नही माने। उनका दूसरा आक्षेप यह था कि मेरे लेखोंमें बहुत-सी बातें आ जाती है। अच्छा होता यदि मैं एक ही बातको आरम्भसे अन्त तक कहता। मैंने कहा, क्या गजब कर रहे है! आप जब 'एसोसिएशन ऑव थाट' का साहित्यमे कोई स्थान ही नही मानते तो फिर भला मॉण्टनी कैसे ब्रेक हो। वही बात बार-बार कहनेसे ही तो पत्नीसे मेरी खटक जाया करती है। वे अपनी बातपर अडे रहे। परिणाम यह हुआ कि साल-भरके बाद पाण्डुलिपि जैसी गयी थी वैसी लौट आयी। लाल स्याहीके निशानोसे पता लगा कि उन्होने संकलनका केवल एक ही लेख देखा था। मुझे बादमें पता लगा कि उन दिनो वे अपनी पत्नीका उपन्यास छपानेके प्रयत्नमे लगे हुए थे। एक दूसरे देवताके द्वारपर गया तो देवता सो रहे थे। जब भी गया वह सोते ही मिले। अन्तमे एक साहब राज़ी हो गये और उन्होंने भूमिका लिख डाली पर उस भूमिकामे उन्होने अपनी आत्मस्तुति की थी और इतनी घटनाओंका उल्लेख किया था कि मुझे लाल किलेके सामने पटरीपर बैठे हुए फोटोग्राफ़रके परदेकी याद आ गयी जिसके सामने कुरसीपर बैठाकर वह देहातियोकी तसवीरें खीचा करता है। इस परदेपर आपको सब-कुछ मिलेगा, हवाई जहाज, रेलगाडी, हवेली, उद्यान, मोटर, फ़व्वारे, तालाब, एक कोनेमे नेताओंकी तसवीरें, दूसरी ओर देवताओकी, मतलब यह कि फोटोग्राफर महाशयकी कल्पना जहाँतक दौड़ सकती है और देहाती जिन-जिन चीजोको पसन्द कर सकता है वह सब उस परदेपर मौजूद रहती है। इस जटिल पार्श्वभूमिमे जैसे देहातीका अस्तित्व खो जाता है उसी प्रकार उस भूमिकामे मेरा अस्तित्व खो गया था। मुझे बादमें पता लगा कि वे व्यावसायिक भूमिका-लेखक थे। तबसे मैंने भूमिका लिखवानेका विचार छोड दिया है और आज अपना यह सकलन मै बिना भूमिकाके ही आपके सामने पेश कर रहा हूँ। इसे भूलसे मेरी भूमिका न समझ बैठिए।



औरोंकी दृष्टिमें—मैं

आज मैं वह सत्कर्म करने जा रहा हूँ जो मेरे मित्र और आन्तर्भारतीय सर्वतोमुखी प्रतिभावान् जन्मजात पण्डित-लेखकके कथनानुसार एक ऐसा विकट कार्य है जिसे संसारके चुने हुए महान् व्यक्ति भी नही कर पाये। और वह सत्कर्म है दूसरोकी आँखोंसे अपने-आपको देखना। अत उन्होने नाक लम्बी करके मुझसे कहा था कि अच्छा होगा यदि औरोकी दृष्टिसे अपनेको देखनेकी बजाय मैं अपनी ही दृष्टिसे अपनेको देखूँ पर मुझे उनकी बात इसलिए नही जँची कि जिस दृष्टिसे मै औरोको देखता हूँ उस दृष्टिके कोणोमें मेरा अपना व्यक्तित्व सर्वत्र ही विद्यमान रहता है। अतः अपनी ही दृष्टिसे अपनेको देखना केवल पुनरावृत्ति ही नही होगी वरन् मेरा जो यथार्थ रूप सहज ही पाठकोके सामने उतरता रहा है उसे सँवारकर प्रस्तुत कर बैठनेकी भी सम्भावना हो सकती है। ऐसी दशामे भी दूसरेकी ही आँखें मुझे देखेंगी और अन्तमे मुझे उन्हीकी आँखोसे अपने-आपको देखना लाजमी हो जायेगा। मेरे इस हितैषी मित्रका यह भी कहना है कि ऐसे प्रयासमें अनेक मनोवैज्ञानिक कठिनाइयाँ है और एक ऐसे साहसकी आवश्यकता है जो केवल विदेशमें पैदा होता है और चूँकि विदेश-यात्रासे मैं सम्पन्न नही हूँ, मेरे पास उसका इम्पोर्ट-लाइसेन्स नही है अतः इस दिशामें मेरा कोई भी प्रयास सचमुच एक साहसका कार्य होगा।

जहाँतक मनोवैज्ञानिक कठिनाइयोका सम्बन्ध है मै समझता हूँ कि ये कठिनाइयाँ भी दूसरोकी ही दृष्टिसे देखी जा सकती है। यदि अपनी

[illegible]

[illegible]

[illegible]

और इसीलिए मेरा 'प्रयोग' [illegible] जाता है। उन्हें बड़ी परेशानी होती है कि [illegible] सब बातोंमें अपनी टांग फंसाये रहता हूं जो उनकी मान्यताके अनुसार मेरी पहुंचके बाहरकी होती हैं। अतः व्यवहारमें जब-जब ये [illegible]

हो जाते है तब-तब वे एक जमानेमें मेरे क्लर्क होनेको मेरी कमज़ोरी समझकर उसका उल्लेख करना नही भूलते। उन्हें विश्वास है कि अहंकारकी मुझमे इतनी मात्रा है कि मै अपने अतिरिक्त कुछ भी देखना पसन्द नही करता। उनके अनुसार इसका मूल कारण मुझमें विद्यमान अफसर बना हुआ क्लर्क है क्योकि 'प्यादेसे फरजी भयो, टेढो-टेढो जाय !'

कई सहयोगी मेरे भीतरके क्लर्कको कुछ मौकोपर श्रेयस्कर भी मानते है क्योकि या तो वे स्वयं किसी-न-किसी रूपमें क्लर्क रह चुके होते है या फिर दूसरोको काटनेके लिए अपनेमे क्लर्की न होनेके कारण मेरे क्लर्कके 'ड्राफ्ट'की उन्हे आवश्यकता पडा करती है। साहित्यिक-जन चाहते है कि मै उनसे दो कदम पीछे हटकर चलूँ क्योकि यत्र-तत्र कुछ व्यंग्य-लेख लिख डालने-भरसे मै उन-जैसे मचानपर वास करनेवाले अनेक पुस्तक-प्रणेता विद्वानोकी पक्तिमे नही आ सकता। और फिर एक क्लर्क लिख भी क्या सकता है क्योकि न तो उसके पास अपना पुस्तकालय होता है, न बिना मूल्य आयी हुई पत्र-पत्रिकाएँ, न दफ्तरसे उडायी हुई कैंची और न पडोसीसे माँगा हुआ गोद। उसके पास तो होती है एक कलम। और कलमसे भी कही साहित्य-सर्जना होती है! अतः ऐसे साहित्यिक मित्रोके साथ जब कभी चलनेका मौका आता है तो मै उनसे दो कदम पीछे ही रहता हूँ तथा मौन धारण करके भानुमतीके पिटारेको करामात देखा करता हूँ। मेरे एक मित्र मुझे अत्यन्त कृतघ्न समझते है क्योकि आर्थिक कठिनाइयोमे, मुझे उधार रुपया देनेके बावजूद, मै उस एहसानसे इतना नही दब गया हूँ कि मेरे मुँहमे धूल घुसकर वह जिन्दगी-भरके लिए बन्द हो जाता। एक साहबको यह भी गिला है कि मै कुछ लेख लिखकर ही अपने-आपको लम्बा-चौड़ा लेखक मान बैठा हूँ और साहित्यिक चर्चाओमे अनधिकार रूप-से भाग लिया करता हूँ। अत' जब वे 'स्पष्ट'को 'अस्पष्ट' और 'ज्ञ'को 'ग्य' कहते है तो मुझे ज़हरका घूँट पीकर चुप रहनेके सिवा दूसरा चारा नही रहता। एक और सज्जन मुझे खुशामदपसन्द निरा बेवकूफ

समझते हैं क्योंकि अपने किसी भी कामके लिए वे मेरे सामने घिघिआया करते है और जब मैं उनकी हालतपर तरस खाकर उनका काम कर देता हूँ तो वे मेरे पीछे मुझे गालियाँ दिया करते है और मित्रोसे कहा करते है कि उन्होंने मुझे कैसा बेवकूफ बनाया। कुछ ऐसे भी महानुभाव है जो मुझे फूहड, पाखण्डी और अहमक समझते है। फूहड़ इसलिए कि ईश्वरमे मेरा विश्वास है। पाखण्डी इसलिए कि मै ईश्वरका ध्यान किया करता हूँ और लोगोके न चाहनेपर भी उसकी चर्चा करके उन्हें 'बोर' किया करता हूँ और अहमक इसलिए कि अपना अमूल्य समय मैं ऐसी उपासना-में व्यतीत करता हूँ जिसका नाम कमानेसे जरा भी सम्बन्ध नही है। उनकी झुंझलाहटका एक यह भी कारण है कि जब-जब वे सुबह मुझे घर-पर फोन किया करते है तब-तब उन्हें यही उत्तर मिलता है कि मैं ध्यानस्थ हूँ।

मेरे वे सभी रिश्तेदार जिनसे मै अधिक सम्पन्न हूँ मुझे अहंकारी समझकर मुझसे कतराया करते है परन्तु जो मुझसे भी अधिक सम्पन्न है वे मुझे प्राय. नीचा दिखानेकी टोहमे रहते है और इसलिए मै उनसे कत-राया करता हूँ। ऐसे विद्वानोकी भी कमी नही है जो मुझे स्वार्थी और कृपण समझते है क्योकि मै हर बातमें अपने फायदेकी सोचनेका आदी हूँ और चायका बिल भी शायद ही कभी चुकाया करता हूँ।

मोहल्लेवाले मुझे अकडबाज समझते है। उन्हें शिकायत रहती है कि मैं शामको उनकी चौकड़ीमे जाकर न तो दफ्तरी बातें करके अपने पैंतरो-का गरम होकर सरस बखान किया करता हूँ और न ताश या चौपड़ खेलनेमें समय चौपट किया करता हूँ। बीबी-बच्चोंसे छुडाकर अपने बीच मुझे घसीट ले जानेके जब उनके सब प्रयत्न विफल हो गये तो उन्होने मेरा 'सोशल बॉयकॉट' कर दिया है यानी मुझसे दुआ-सलाम भी बन्द कर दी है। मेरे एकमात्र पड़ोसी (एकमात्र इसलिए कि मेरा मकान सिरेवाला है) मुझे असामाजिक जानवर समझते हैं और सो इसलिए कि न तो मैं

वच्चोको लेकर होनेवाले पड़ोसियोंके झगडोंमें उनकी ओरसे मर-मिटनेके लिए तैयार रहता हूँ और न उनके वच्चोके कारनामोके लम्बे-चौड़े और सरस वर्णनसे मुझमे रस-निष्पत्ति होती है। अतः मुझमें रस उत्पन्न करनेके लिए लुक-छिपकर वे नित्य नये प्रयत्न किया करते है ताकि और नहीं तो कमसे कम वीर रस ही मुझमें उत्पन्न हो — जैसे सव्जीके छिलके मेरे दरवाज़ेके सामने डालना, सुवह-शाम ज़ोरसे रेडियो वजाना, अपने वच्चोसे लड़नेके लिए प्रोत्साहित करना, सुवह वाहर पड़ा हुआ मेरा अखवार गायब कर देना आदि-आदि।

इन अनेक दृष्टियोसे पाठकोके सम्मुख मेरा ठीक-ठीक चित्र न खिंच पाया हो तो वे कृपया अपनी दृष्टिसे उसमें फेर-फार कर लें ताकि वह अधिक सुस्पष्ट वन सके। यकीन जानिए मुझे ज़रा भी आपत्ति नही होगी।



सम्मान समारोह

स्वराज्य प्राप्त कर लेनेके वाद इस देशमें जिस बीमारीने सबसे अधिक ज़ोर पकडा है वह है समारोहोंकी बीमारी। इस बीमारीसे शायद ही कोई अछूता वचा हो क्योकि स्त्रियाँ हों या पुरुष, बच्चे हो या बूढे सभी इसके मरीज बन गये हैं तथा तरकारी, पकवान, घूरेकी सफाई, यहाँतक कि कुत्ते, बैल, गाय, भैंस और बकरों आदिको लेकर रोज कोई-न-कोई समारोह हमारे देशमें हुआ करता है और उसे देखनेके लिए बसमें बेवसीसे धक्के खाते हुए बीवी-बच्चोंको समेटे आप चले ही जाते हैं। समारोह कोई नयी चीज़ हो सो भी बात नही। इसका इतिहास काफी पुराना है और प्रचलन भी सभी देशोंमें है। परन्तु प्राचीन कालमें जो समारोह हुआ करते थे वे वर्षमें केवल एक-दो वार कुछ विशेष अवसरोंपर ही हुआ करते थे जैसे वसन्तोत्सव, होली आदि अवसरोपर, बकरी और भेड़ोकी समस्यापर नही। परन्तु आज मॉडर्न आर्टकी नुमाइशोकी भाँति असख्य समारोह होते हैं और आप बन-ठनकर धोती उछालते, उनमें भाग लेनेके लिए लपककर जा पहुँचते हैं जिससे भेंड-बकरियोका दर्शन आपको ही सबसे पहले हो। दूसरे शब्दोंमे भेंड-बकरियोके साथ आप भी बडी तत्परतासे भेंड-बकरी बन जाते हैं और फूले नहीं समाते क्योकि किसीका पहुँचा पकडनेके कारण आप एक पहुँचे हुए व्यक्ति होते हैं और इस नाते जनताके खर्चेसे छपी हुई एक सुन्दर-सी आमन्त्रण-पत्रिका आपके पास पहुँची हुई होती है।

सम्भव है समारोहोंमें आपकी इस तरह दिलचस्पीका कारण 'समारोह' शब्दका अर्थ ही रहा हो जो आपने कोई अनुवाद-कार्य करते समय हिन्दी भाषा सम्बन्धी अपने ज्ञानको बढानेके लिए किसी शब्दकोशमें पढा हो। यदि यह सच है तो सबसे पहले आपको गीदडोंकी मण्डलीमें जाना चाहिए क्योकि रातको गीदड़ोका 'हूँ-हा' शब्द शब्दकोशीय अर्थमें एक समारोही साबित होगा। परन्तु आप गीदड़ोके समारोहमे भाग नही लेते, शायद इसलिए कि उनमें न तो आमन्त्रण-पत्रिका छपवानेकी प्रथा है और न किसी गीदड़ नेताको अग्रगण्य बनाकर उसकी 'हूँ-हा'के बाद 'हूँ-हाँ' करनेका रिवाज़ है। वे तो बेचारे जब बोलते है तो सब एक साथ बोलते है। शब्दके अर्थकी दृष्टिसे वे कुछ भी अनर्थ नही करते क्योकि जो वे जगली जानवर होकर करते है वही तो हम-आप भी करते है। जो हो, मै तो यहाँ इतना ही कहना चाहता हूँ कि हमारा देश आज इस पेचीदा बीमारीसे बहुत अधिक बीमार है और उसका कष्ट मुझे होता है। क्योकि जब-जब मै किसी समारोहकी खबर पाता हूँ तब-तब न चाहनेपर भी उसके 'सिम्पटॅम' मेरे सामने आ जाते है और मै झल्ला उठता हूँ जैसे वह बीमारी मुझे ही होने जा रही है।

ऐसी ही झुँझलाहट मुझे आज सुबह हुई जब दफ़्तर पहुँचते ही मेरे मित्र और खडी बोलीके एक अन्तर्देशीय कवि और लेखकने खडे होकर विनयसे सिकुडकर एक सम्मान-समारोह पत्रिका कृतकृत्य होते हुए मेरे हाथोमे थमा दी और मेरी टिप्पणी सुननेके लिए नीचे कुरसीपर अधिष्ठित होकर आँखोका मैल निकालने लगे। कहना न होगा कि पत्रिकामे वही सब-कुछ था जो ऐसी अन्य पत्रिकाओमे होता है। जैसे मुख-पृष्ठपर उनका एक फोटो, एक उद्गारहीन भाषण, उनकी सिस्थिमके नामपर लम्बा परिचय और ऐसी साहित्यिक सेवाएँ जो दूसरे प्रतिभावान् सुविख्यात लेखक किया करते है, राष्ट्रीय आन्दोलनके सिलसिलेमें जेल-गमन, कुछ पुरानी साहित्यिक गोष्ठियोके चित्र आदि-आदि। सक्षिसमे पत्रिका सम्मानित महो-

दयकी ही भाँति परम्परावादी थी। इस घिसे-घिसाये मैटरमे तीन ऐसे फोटो थे जिन्हे देखकर इस परितापमे भी मैं अपने मित्रके बिखरे हुए व्यक्तित्वको बटोरकर उसकी तुलना पत्रिकाके चरित्राकनसे करनेके लिए मजबूर-सा हो गया। पहला वह फोटो था जिसमे वह हाथ जोडे किसी सुमुखी मन्त्राणीके सम्मुख, जो पत्नी होते हुए भी सभापतिका आसन ग्रहण करनेके लिए घेर-घारकर बुलायी गयी थी, सस्मित, विनयकी मूर्ति बने ऐसे झुके हुए थे जैसे वे मन्त्राणीजीपर गिर पडनेसे अपने-आपको जोरसे रोके हुए हो। सामने मन्त्राणीजी भक्ति-भावसे निहाल होकर हाथ जोड़े ऐसे आँखें मूँदे हुए थीं जैसे वे साहित्य देवताका स्मरण करके मन-ही-मन 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'मे घुल-मिल गयी हो। मन्त्राणीजीकी भावाकुलतासे लाभ उठानेके लिए हमारे सुअवसरवादी लेखक महाशयकी आँखें सामने मन्त्राणीजीके उस हृदय-प्रदेशपर अटक गयी थी जो विवस्त्र होकर बाहर झाँक रहा था। साथ ही पैतालीस डिग्रीके एंगलसे वे यह भी देख रहे थे कि, जनता उनके देखनेको कही देख तो नही रही है। दूसरा वह फ़ोटो था जिसमें वे व्यासपीठपर 'माईक'के सामने खड़े भाषण दे रहे थे और उनके ऊपरी दाँत जो नीचेके दाँतोके समान ही दिखावेके थे, यानी नकली थे, नीचेवाले होंठपर चुनावमें खड़े उम्मीदवारकी भाँति लटक आये थे, मानो वह अपने मुहावरेके सत्यको सिद्ध करनेके लिए मैदानमें उतर आये हों। तीसरे फोटोमें वे दस वर्ष पूर्व किसी कवि-गोष्ठीकी अध्यक्षता करते हुए कवयित्रियोंके एक जमघटमें विराजमान थे। उनके चेहरेके भावको देखकर ऐसा लगता था कि उन्हें साहित्यकी अपेक्षा कवयित्रियोके पतियोकी ही अधिक चिन्ता थी क्योकि उनकी नाक ऊपर टोपीकी नोककी सीधमें च्युत होकर वातावरणमें कवयित्रियोके पतियोके अस्तित्वको सूँघ रही थी।

इन तीन चित्रोमें अंकित मेरे मित्र तथा सम्मानित लेखक महोदयकी आँख-नाक और दाँतोने मुझे कुछ समयके लिए अन्तर्मुख बना दिया और मै निर्निमेष सामने बैठे हुए अपने मित्रकी ओर ताकता रहा। उस

ध्यानस्थ अवस्थामें उनके व्यक्तित्वके अनेक आवरणोंको हटाकर जब मैंने देखना शुरू किया तो मैंने देखा कि वे आवरण ठीक प्याज़के छिलकों-की भाँति है। एक-एक छिलका निकालते जाइए और आप देखेंगे कि अन्तमे रिक्तताके सिवा आपके हाथ कुछ भी नही आता। परन्तु ठीक प्याज़के छिलकोकी ही भाँति यह सब आवरण मोटे-पतले थे और चूँकि इन्हीं आवरणोसे मेरे मित्रका चिर-परिचित व्यक्तित्व बना है, मैं यहाँ उन अवगुण्ठनोको क्षण-भरके लिए उठाना आवश्यक समझता हूँ ताकि मेरी ही भाँति आप भी देख सकें कि उनकी ओटमें क्या है।

आपकी सुविधाके लिए मैं उन्हे 'कण्टक' कहना पसन्द करूँगा क्योकि चुभकर या घुसकर ही उन्होने साहित्य-जगत्में अपना आसन जमा लिया है और सो इस प्रकार कि नेताओके झुण्डमें वे जेल जाकर गान्धी टोपी-की नोक-से घुसे थे, प्रकाशकोंके दुर्गमे कैंचीकी नोक और गोदके सहारे घुस गये थे और साहित्यिक ससारमें धुरन्धर लेखकोका चरण-चुम्बन करके उन्होने प्रवेश किया था। इसी भाँति अन्य लेखकोके नाम और प्रकाशकोकी मायासे फायदा उठाकर, उनकी रचनाओंको एकत्रित करके अपनी ओरसे पिटी-पिटायी भूमिका देकर उन्होने सम्पादक वर्गको पच्चर कर दिया था। राष्ट्रभाषाके हर प्रकाशकके वे वैतनिक परामर्शदाता है क्योकि समालोचनार्थ आयी हुई पुस्तकोसे बने हुए उनके निजी पुस्त-कालयकी अलमारियोमें पुस्तकोके पीछे अदृश्य, कैंची और गोदमें तैयार ऐसी अनेक पाण्डुलिपियाँ विद्यमान है जो प्रकाशककी फ़रमाइश होते ही पाँच मिनिटके अन्दर किसी भी कक्षाके लिए टैक्स्ट बुक्सके लिए प्रेषित की जा सकती हैं।

नेताओकी चिलम भरनेसे वे अनेक समितियोमे भरती कर लिये गये थे। परिणाममें समितियोका कार्य तो अधिक कठिन हो गया परन्तु उनके अपने इकमंजिले मकानपर दो और मंज़िलें चढ़ गयीं। साहित्यिक क्षेत्रमें जमनेके लिए उन्होने एक ऐसे गुरुकुलकी योजना

बनायी जिसमें एक गुरु और अनेक लघु शिष्याएँ हों। परिणाम यह हुआ कि उनका शिष्या-सम्प्रदाय इतना विस्तृत हो उठा है कि देशके हर हिस्सेमे उनकी कोई-न-कोई शिष्या अवश्य विद्यमान है। परन्तु कण्टकजी ऐसे साहित्यकार नही है जो केवल अपने लेखनसे नाम पाते है। अत· अनेक उदित और अनुदित मीराओके हृदयमें अधिष्ठित होने और प्रकाशकोंके जमघटमे बाँसुरी बजानेके बावजूद वे सन्तुष्ट नहीं हुए और एक दिन मकानके सामनेवाले नीमके पेड़के नीचे खाटपर बैठे-बैठे सीधे हाथकी उँगलीसे बायें नथनेका अन्वेषण करते हुए उन्होंने एक ऐसी योजना बना डाली कि 'हीग लगे न फिटकरी और रंग चोखा'। इस योजनाके अन्तर्गत प्रकाशकोके पैसे, शिष्याओके प्रेम, पत्रकारोके सहयोग तथा स्थानीय नेताओके सौजन्यसे एक ऐसा अवसर पैदा किया गया जिस-पर कण्टकजीकी साहित्यिक सेवाओंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की जा सके। कण्टकजीके त्रैमासिक परिश्रमके कारण ही इस योजनाके अनुरूप कण्टकजीका वह सम्मान-समारोह सम्पन्न हुआ जिसकी पत्रिका आज मेरे सामने है।

पत्रिका उन्हे थमाते हुए मैने कहा "सचमुच आप प्रशंसनीय है।" वे समझे मै उनकी प्रशंसा कर रहा हूँ अत. गद्गद भावसे बोले, "अभी तो महाराज इस सत्संगकी चर्चा भी होगी", – इतना कहकर उन्होने झट जेबमें हाथ डाला और एक प्रेस-कटिंग मेरे सामने आ गया। कहना न होगा कि कटिंगमे सम्मान-समारोहकी ही चर्चा की गयी थी और कण्टकजीकी साहित्यिक सेवाओंमे चार-चाँद लगा दिये गये थे, जिनकी ज्योतिसे कण्टकजीका चेहरा अब भी उजला-उजला लग रहा था। मैंने कहा, "आप धन्य हैं" और कण्टकजी फूले हुए उठ खड़े हुए मानो उन्होने एक और व्यक्तिसे लोहा मनवा लिया हो।



पापाजी : एक चिन्तन

'विचित्रताका नाम ही सृष्टि है' – यह मान लेनेपर भी हम उस चिरन्तन सत्यको गणना इस गणतन्त्रवादी युगमे भी उतनी नही करते जितनी 'लला'की माँकी धारणाओकी, फिर चाहे वे धारणाएँ सास-ससुरकी ज्यादतीको प्रस्थापित करनेके लिए श्रीमतीजीके आटा गूँधते-गूँधते किये गये अथक बौद्धिक परिश्रमका फल हो, चाहे आपके 'निकम्मेपन' के सम्बन्ध-में हो – जो खिताब आपकी कर्म-विरुद्ध धर्मपत्नीने आपके नाजुक और पिघलते क्षणोमें आपकी सारी डिग्रियो, अपने दोपो और दूसरेके गुणोको भुलानेकी भाँति भुलाकर आपपर बेजोड़ मढा हो या उनके स्वभाव और आपके स-भावके अभावके 'संजोग' से बनी खुरदरी मूर्त्तिके लटपटे ढग और अटपटी हरकतोंकी भूरि-भूरि प्रशंसाविषयक हो।

दूसरे शब्दोमें इस सत्यको जानते हुए भी हम उसकी ओर उसी प्रकार दुर्लक्ष्य किये रहते है जिस प्रकार अपने 'काका' या 'काकी' की शरारतोकी ओर, फिर चाहे वे शरारतें पड़ोसीकी साइकिलका 'वाल' निकालनेसे लेकर 'शान्ति-हरण' और 'अशान्तिवरण' तक ही क्यो न हो। सत्यको ओर इस दुर्लक्ष्यका कारण आजके ससारमें 'स्व'-द्वारा 'पर'-का डकारा जाना है, फिर चाहे वह अर्थसहित हो या अर्थरहित।

हमारे जीवनमे कई क्षण श्रीमतीजीके छोटे-बड़े और सस्ते सस्करणो-सहित मायके चले जानेके बाद हमें इसकी याद दिलाते है, पर हम उसे उसी भाँति भूल जाते है जिस भाँति घरकी अबलाका सबल रूप देखते

ही अपने आदमीपनको, फिर चाहे घरके बाहर आपके अस्तित्वपर ब्रह्मरूप सम्पादकोंने अपनी पैनी कलम और मोटी नज़रसे अपने पत्रके कॉलम रँगें हो या संस्थाओने आपसे कुछ पानेके लिए महफ़िलें सजाकर लाउडस्पीकरोंपर चटपटे भाषणों-द्वारा आपकी प्रशंसाके पुल बाँध-बाँधकर श्रोताओके कानों और अपने कार्यकर्त्ताओके गलोंको साफ किया हो।

इस सत्यकी प्रतीति मुझे उस दिन हुई जिस दिन श्रीमतीजीसे कुछ चिकनी-चुपड़ी सुननेकी अदमनीय और एक अरसेसे संचित लालसासे व्याकुल होकर मैं दिल्लीके बाज़ारकी तंग और अँधेरी आँतों (गलियो) को छानता, खोपडी तपाता, उनसे कुछ प्यार-भरी सुननेकी उत्कट प्यासको घर पहुँचने तक बुझानेके लिए मीठे सोडा-वाटरकी बोतल (?) हलकसे नीचे उतारकर लालाके अनुरोध और इण्डिया गेटकी घासपर गरमियोकी भावनी शामको देखी हुई सुहावनी परकीयामें स्वकीयाका आरोप करके की हुई गुदगुदानेवाली कल्पनाको साकार करनेके लिए पैंतीस टके (रुपये) लालाकी पसीजी हथेलीपर गिनाकर तीस वर्षीया श्रीमतीजीको प्रसन्न करने और कुछ नरम-नरम वरदान पानेके हवाई महल बनाता घर पहुँचा। श्रीमतीजी योगिनी-सी मुक्तकेशा, मुँहपर राख पोते, मैला पेटीकोट पहने, हाथमें झाडू और बगलमें घमण्डी (घमण्डी मेरे छोकरेका नाम है) को दाबे पड़ोसीके दादा-परदादाओसे लेकर आनेवाली पीढियो तककी खबर ले रही थी। घमण्डीकी अम्माके इस रूपसे सुपरिचित होते हुए भी मै 'उनकी' मुखमुद्रा और पैतरे देखकर सकपका गया। कहना न होगा कि उनके भरे मस्तिष्क और खाली वाक्य-बाणोसे परकीया और स्वकीया विषयक कोमल भावनाओंका निचोड (रस) जो अनायास ही मुझमें पैदा होने लगा था, मिक्सचरकी भाँति एक होकर कुछ प्यार-भरी सुननेके चढ़ते हुए बुखारको ठण्डा करने लगा। पचास बार सिर खुजाकर और सौ-सौ बार लोट-लौटकर अपने पुरुषत्वका बार-बार स्मरण करता, उस असहनीय परिस्थितिमें अपना सारा साहस बटोरकर, जब मैं दबे

पाँव श्रीमतीजीके पास पहुँचा तबतक वे नरम पड चुकी थी, क्योंकि तब वे बमकती हुई खुले बालोमे चाणक्यकी चोटीकी भाँति गाँठ बाँध रही थी। मैं इस फिनिशिंग टॅचसे परिचित था अत. सोती हुई सिंहनीको छेड़नेके बजाय उससे कतरा जाना ही योग्य समझकर उलटे पाँव लौट आया और चुपचाप खाटपर फैले हुए नन्हेंके पोतडोको एक ओर सरकाकर अपनी तकदीरका फैसला सुनने बैठ गया। वे फ्रण्टियर मेल-सी दनदनाती हुई आयी तो खिसियायो-सी छूटते ही पूछ बैठी – "ये क्या है ?" "तुम्हारे लिए साडी लाया हूँ" – मुँहसे निकल पडनेवाली रालको गटकता हुआ मै घिघिआया और काँपते हाथोसे साडी उनकी ओर बढा दी। साडीके निरीक्षणका जो असर हुआ, उसका उल्लेख करके मैं आप-जैसे अपने साथियोकी सहानुभूति नही पाना चाहता। हाँ, इतना बता देना आवश्यक समझता हूँ कि साड़ीपर छोटे-छोटे नाजुक प्रिण्टकी जगह यदि एक अच्छा-खासा रंग-बिरंगा जंगल होता तो मगलकी सम्भावना हो सकती थी और यदि हलके रगके बजाय चटकीला रंग होता तो मेरे मुँहका रंग उडनेकी नौबत न आती।

सुबहकी धरी हुई खाकर जब मैं शामको एक आवश्यक कामके बहाने बाहर निकला तो वैचित्र्यकी समस्या मेरे मस्तिष्कको कुरेद रही थी। श्रीमतीजीकी 'पर्सनैलिटी' और अपने जीवनकी निरर्थकतापर विचार करता चला जा रहा था कि 'पैणो' शब्दके 'ण' की धारने अकस्मात् मेरी विचारधारामे 'पक्चर' कर दिया। देखा तो सामने एक जलसा दिल्लीकी स्वतन्त्रताके पश्चात्की विशेषताको चरितार्थ कर रहा था। चूँकि यहाँका कोई भी फंक्शन चाहे वह सेनेटरी ड्राइव, फैमिली प्लानिंगके बारेमे हो, या सामाजिक, वैवाहिक, कौटुम्बिक या धार्मिक 'एण्टरप्राइज़' हो, चुपचाप नही होता, इसलिए इस जलसेमें भी नेताके मुसाहिबोके भाँति चारो ओर अपने अगुआओके सिद्धान्तोके ग्रहण और प्रसारणार्थ लाउड-स्पीकर चिपके हुए थे। स्टेजकी ओर मेरा ध्यान गया तो देखा कि मेरे

चिरपरिचित भारी-भरकम ऊँचे पूरे पापाजो नथुने फुलाये नेताके अन्दाज़से और पैसेंजरकी चालसे अटक-अटककर गान्धार के 'ग' और पंचमके 'प' (ग प) के लहजेमे आलाप रहे थे – 'पाइयो ते पैणों' – तभी श्रोताओमें कोई बिगडा जीनियस अपनेको रोक न पानेके कारण ज़ोरसे हँस पडा, जिसे सुनकर पापाजीने सशक दृष्टिसे अपने निकट बैठी हुई तोंदिल कमलेशजीपर, जिन्होंने उनके साथ बीस सर्दियो-गरमियोके उतार-चढाव देखे थे और चौदह काका-काकियोंकी नाक पोछकर ७२ मकानोकी दीवारोपर आधुनिक शैलीमें चित्रकारी की थी, दृष्टिपात करके अपने कथनको सुधारते हुए कहना आरम्भ किया, "पाइयो ते काके दी माँ नु छडके पैणो ! मुझे स्टेजपर बुलाकर मेरे नाल जेडी किरपा कीती गयी है ओदी ज़िम्मेदारी निभान दी मैं जी जानतो कोशिश करांगा" त्वान्हू पता होना चाइएदा के साडी 'तन्दुरुस्ती होर खुराक' दी सकीम जेदे विच्च सेअत बनान वास्ते साडे सभापतीने हुण जेडी अपील कीती है ओदे वास्ते सानू खालस कीऊ (घी) दा इस्तेमाल करना चाइएदा''' । सट्रांग रापटर दे वास्ते सानू तगडा होना चाइएदा, असी देखदेने (देखते है) के साडे एस देश दे होर प्रा कलचर होर कारीगरी (कला) दी सकीमें बनान दे वास्ते जेडी कोशिश करन लग्गे है, एकदम बेफ़िज़ूल है, मेरे ख्याल दे विच्च साडे देश दा कलचर बनान दे वास्ते एग्रीकलचर मे सानू तरक्की करनी चाइदीए''' दूजे लफजोमे मैं ज़ोर नाल कहूंगा कि साडा कलचर काश्तकारी मंजूर कर लीत्ता जाय'''।" 'ज़ोर' शब्द उचारते समय पापाजीका स्वर फटने और पैर पटकनेसे श्रोताओंमें जो उत्साह फैलकर 'जीओ, जीओ' के आशीर्वाद उठने लगे तो पापाजी मैदान मारे-से पैंतरा बदलकर आगे बोलने और उत्साहित श्रोताओंको खामोश होकर सुननेके लिए प्रार्थना करनेके इरादेसे विनयके साथ खीचातानी करते हुए कहने लगे – "तुवान्हूं ऐस ख़िदमतदार दा निवेदन हेगा कि जेडे प्रा खडे ने ओ बैठके शान्ति नाल सुनन दी किरपा करें" निवेदन करते समय पा 'जो

'विनय' की जगह 'रौद्र' का अभिनय करते-से लग रहे थे, क्योंकि उनकी भौहे तनी हुई थी, मुट्ठियाँ कसी थी, गोभीके पकौडे-सी नाकके प्रशस्त नथुने फूलकर गुब्बारा हो रहे थे और वनस्पति घीकी खुश्कीका गुवार, दोनों मुट्ठियाँ हवामें उछाल-उछालकर मातम मनाते-से विनयवाची शब्द निकालनेमें वे 'आल्हा-ऊदल'के जोशका सर्वांगीण परिचय दे रहे थे, कुछ मद्रासी लुगीधारी जो इडली निगलकर और कॉफी गटककर 'इलया इलया' करते सुंघनी सूंघते नाक बजाते पापाजीका भाषण समझने-समझानेका प्रयत्न कर रहे थे, उनमें-से एकने पापाजीका निवेदन सुनकर वडे अदवसे दूसरेसे 'तेरि उमा' कहकर दुबककर बैठनेका अनुरोध किया। तभी सभामें कोहराम मच गया। 'पा'जी, जिन्होने उसे 'तेरि उमा' कहते सुन लिया था, मचसे कूदकर कहनेवाले मद्रासीकी छाती-पर बैठे उसे बुरी तरह 'कूट' (पीट) रहे थे। मद्रासी मातृभाषामे रो रहा था और पा'जी उसके पितरोका उद्धार करते हुए वर्जिशकी करामात दिखानेपर तुले हुए थे। न धराशायी मद्रासी उनकी बात समझ पा रहा था और न पा'जी मद्रासीकी लटकेदार चीखें और विलम्बित हिचकियाँ। अपने डील-डौल और चौदह वर्षीय दिल्ली-वासके औसानसे जव मैं भीडमे अपना सिर दाखिल करता हुआ आडा घुसा और आवाज भारी किये पूछ बैठा, "गल की है, पापाजी, क्यूँ गरीव नूँ कुट्टन लगे हो" तो पा'जी की वीर-श्रीको जैसे एक पैग मिल गया। मद्रासीपर नूतनतम प्रहार करते हुए वे रेंक पड़े – "साला मादी गाली देंदा है।" वीच-वचाव करके अँगरेज़ीमे मद्रासीसे पूछनेपर पता चला कि उसने महज 'तेरि उमा' शब्द कहा था जो उसकी भाषामे हिन्दीके 'समझे ?' अँगरेजीके 'ओ के ?', मराठीके 'वर ?' वगालीके 'भालो ?' और पजावीके 'आहो' या 'चगा' का पर्याय हो सकता है। जव पापाजी-को मैंने 'तेरि उमा' का अर्थ समझाया तो वे निर्विकार-से 'कोई डर नही' (कोई वात नही) कहते हुए इस प्रकार मचपर लौट आये

जैसे कुछ हुआ ही न था। इस निर्विकार निर्लिप्तता और सुँघनीकी गोल डिब्बीको देखकर जो अब भी पानकी पीक-सी वक्रकाय, प्रश्नचिह्न-सी भूमिपर पड़ी थी, मुझे लगा कि सृष्टिके वैचित्र्यकी वह बात सोलहो आना सत्य है।

इस घटनाने मेरे चंचल चित्तको, जिसे श्रीमतीजीने बारह वर्ष पूर्व सुहागरातके दिन लताडकी बानगी दिखाकर छेड दिया था, स्थिर कर दिया। पापाजीकी निर्विकार गम्भीर मुद्राको देखते-देखते मुझे उनके कई विगत-अवगत रूप दिखाई देने लगे; जैसे भंगका नशा सवार होनेके बाद चटाईका कोई टुकडा नजरके सामने पड़ जानेसे मस्तिष्क उसके अन्दर पैठकर उसकी बुनाईके असख्य अन्दरूनी आवरणोंको खोलने लगता है। उन रूपोमें-से कुछ रूप, जो मेरे स्मृति-पटलपर श्रीमतीजीकी तसवीरके बावजूद स्पष्टतया अकित है और विवेच्य विषयमें सिंधनके तंग ब्लाउज और मेरे परम मित्र लाखासिंहकी तंग पतलूनकी भाँति 'फिट' बैठते है उनकी चर्चा श्रीमतीजीसे दुबारा इण्टरव्यू होनेकी याद आने और घमण्डी-की सरस नाक और उलझे हुए बाल देखनेके पहले कर लेना बुरा नही, हाँ, यदि आपके चाय बनानेका समय या 'सकूल'से लौटे 'पूची', 'पन्नो' या 'रद्धो' को रोटी या खेल खिलानेका समय हो गया हो तो बात दूसरी है। उस दशामें मैं छटपटाकर आपसे अनुरोध करूँगा कि आप पत्नी-व्रतका त्याग करके अखिल विश्व सभ्य नारी परिपद्के नियमो-का उल्लंघन करके मानवीके 'कागज़ी' हृदयपर कुठाराघात न कीजिए।

पापाजीसे जो मेरा प्रथम परिचय हुआ — उन्हींके घरमें। वे 'कच्छा' (जाँघिया) पहने नगे बदन खाटपर लेटे बायें हाथकी ज्येष्ठिकासे सीधा नथना कुरेदते मेरे पेपरमें, जो उनके माँगनेके कारण मैं अभीतक न देख पाया था, 'मेट्रिमोनियल' पढ रहे थे। कमरेमें एक साफ-सुथरा बेल-बूटो-की रंगीन चादरवाला बिस्तर लगा हुआ था जो उनकी रगीनी और कमलेश-जीकी शौखमिज़ाजीका विज्ञापन करनेमें समर्थ था। दूसरी ओर एक बहुत

वडा टीनका सन्दूक था, जिसपर बिलातरतीब 'कॉस्मेटिक्स' रखे हुए थे। किताबके नामपर बिस्तरके सिरहाने 'फिल्म फेयर' पत्रिका पड़ी थी, जिसपर चिपकी 'सरक्युलेशन स्लिप' जता रही थी कि वह सार्वजनिक सम्पत्ति है। बादमें मुझे पता लगा कि मेरे पापाजी, जिन्होने कभी कॅम्यूनिस्ट थ्योरीपर उडता-उडता विचार किया था, स्त्रीको 'कॅमोडिटी' समझकर किसी व्यक्ति-विशेषकी सम्पत्ति नही मानते थे और स्त्रीलिंग होनेके कारण 'किताब' या 'पत्रिका'पर भी उन्होंने वडी ईमानदारीसे कभी भी अपना स्थायी अधिकार नहीं जमाया था। कमरेकी दीवारें उनके बदनकी ही भाँति नगी थी। सिरहानेके सामनेवाली दीवारपर एक ऐक्ट्रेसकी अध-नंगी तसवीर अवश्य थी – जिसमें विज्ञापनार्थ किसी सिगरेटकी छाप और किसी पानवाले मित्रकी मित्रताकी माप (दण्ड इसलिए नही जोडूँगा कि कैलेण्डरकी छीना-झपटीमें शीशेका गिलास टूटकर दण्डका भुगतान हो चुका था) के साथ 'तसवीर तेरी दिल मेरा वहला न सकेगी' वाली आर्तता भी अंकित थी।

मुझे देखते ही पापाजी चट्-से कोनेमें थूककर झट-से मुझे गले मिलने उठ खडे हुए। (श्रीमतीजीके रोजाना प्रहार देखकर उन्होने यह अन्दाज लगा लिया था कि मै इंशोर्ड नही हूँ)। वडी आवभगतसे उन्होने मुझे मोढेपर विठाया और 'मै क्या' (मैने कहा) का मन्त्र उच्चारते हुए अन्दर घुस गये। थोडी देर वाद जब वे तहमत लगाये आये तो तीन पाववाले दो लस्सी-भरे गिलास लिये कमलेशजीको लेकर। उनकी वे कमलेशजी और जगत्को 'पॅणजी'के स्नो, पाउडर और सुरखीसे फिनिश्ड मुख और लिपिस्टिकसे रँगे खूनी होठोके साथ-साथ खिची-तनी काया देखकर मेरा खून गाढा हो गया। मै घमण्डीकी माँको याद करके अपने भाग्यको कोसने ही वाला था कि 'नमस्ते जी'का गुठल, मोटा, भारी रस्टिक वाण जो उनके मुँहसे छूटकर थूक उडाता मेरे मुँहपर वरसा तो जैसे मेरे दाँतोके नीचे किरकिरी-सी आ गयी और श्रीमतीको कोसनेवाला

मेरा मन एक बार उनकी प्रशंसाके लिए लालायित हो उठा।

'यथा नाम विपरीत गुण'वाली कमलेशजीके साथ-साथ लस्सीका चिकना गिलास मेरी ओर बढते ही 'इवनिंग-इंन-कनॉट प्लेस' की गन्ध-को चीरती देशी घीकी जो सुगन्ध उनके शरीरसे आयी वह आज भी सुगन्धके बारेमे मेरी परिभाषाको अधूरी छोडे हुए है – लस्सीका गिलास समाप्त करके पापाजीने अपने पिण्ड (गाँव)का उल्लेख करना आरम्भ किया, जिसे सुनकर मुझे अपने पितर कनागती ब्राह्मणोकी चिकनी-चाँद, उस्तरेकी धार और लटकती चुटियाके साथ-साथ छँटी हुई मूँछें याद आ गयी। 'कीऊ'का महात्म, 'दुद्ध', 'मलाई लस्सी', मक्खन, सरसोका साग, सैर और मायाविषयक जोरदार बातें सुनकर अजीर्ण हुआ-सा मै उठ खडा हुआ। उस दिनसे कमलेशजीने मुझे 'प्रा' मान लिया, प्राकी पत्नीको 'पैण' और पैणके बच्चोको अपने काका-काकी। पापाजी तो मेरा अखबार, साइकिल, रेडियो, स्याही, पॉलिश आदि अपनी ही समझने लगे।

दूसरे दिन मैंने पापाजीको दफ्तर जाते देखा तो आँखें पथरा गयो। वे एक कीमती सूट पहने, जैसा मुझे अपने आनेवाले सात जन्मोमे होने-वाले विवाहोमे भी 'ससुरो'की ओरसे न मिलता, स्नो पॉउडर और गालोंपर तनिक सुरखीका टॅच दिये सजे एक ऊँचे आई-सी० एस्० ऑफिसर-की शानसे चले जा रहे थे। उन्हें वही सूट निरन्तर पहनते देखकर मैंने बादमे जाना कि वह उन्हे एक बडे मजबूत पलंग और बीस जोडा रेशमी नाडो (कमरबन्द) आदिके साथ कमलेशजीके विवाहमे मिला था। आई-सी० एस्०की शानमे-से क्लर्ककी आन (?) घटानेपर जो बाकी बचा, उसका 'एकाउण्ट' खोजते समय मुझे पता लगा कि पापाजीकी ६० रुपये दफ्तरी इनकमके साथ-साथ आमदनीके कुछ 'आउटकम' जरिये भी है, मसलन वे कमलेशजीके नामसे बीमा-एजेण्ट है, देहलीमे स्थाना-भावके सुअवसरसे लाभ उठाकर वे लोगोको 'जैसा आसामी वैसा दर'

वाली कॅमीशनपर मकान दिलाते है और सामने सडककी पटरीपर बैठनेवाले अण्डेवालेसे भी वे कुछ पाते है जो प्रायः कॅमिटीके आदमी आते देख चलानके भयसे अपने (?) अण्डोकी टोकरियाँ उनके यहाँ रखता है। छुट्टियोके दिन कमलेशजीरूपी पास और मित्रोकी 'आस'से फ़ायदा उठाकर वे 'ऐश' से सिनेमा देखते थे। दूसरे शब्दोमें 'माया' कमानेके उन्होंने कई 'मय्यर' अपनाये हुए है और आमदनीके नये-नये ज़रिये खोज निकालनेमे 'प्रा' दम्पति एक शोधार्थीकी लगनसे बराबर 'परयतन' शील थे। उन्हें अखण्ड विश्वास था कि भाग्यके 'सटोक'से वे एक-न-एक दिन अवश्य बडे आदमी बन जायेंगे और उनका विश्वास एक हद तक ठीक भी उतरा है क्योकि एक वडे आदमीकी हैसियतमें ही आज वे इस 'सटेज' पर दो ज्ञानकी बातें सुनानेके लिए टैक्सीमे बिठाकर लाये गये है और मै किसी समयका उनका पडोसी कमलेशजीकी छोटी मूँछोकी ही भाँति, बिना बदले-बढे, उनका श्रोता बना खडा हूँ।

पापाजीका रिव्यू करते ही मुझे लगा कि सृष्टि-वैचित्र्यकी बात सत्य है, पापाजी परम सत्य है, घमण्डीकी माँ चरम सत्य है, असत्य हूँ तो मैं – केवल मै – मेरे अटपटे विचार !

मैं रेडियो हूँ

मै रेडियो हूँ – रेडियो कलाकारोंका जनक। इसीमें मेरी महानता है। ठेठ हिन्दीमें मुझे 'आकाशवाणी' भी कहते है, और इस नाते कई हिस्सोंमें विभाजित होनेपर भी मै एक हूँ – सर्वव्यापी हूँ।

मेरा काम वोलना है – चाहे खरीदा जाऊँ, चाहे किराये या मँगनी-पर लाया जाऊँ, मुझे वोलना ही पडता है। चुराये जानेपर भी मेरी ज़बान चुप नहीं रहती। मै वोलनेका महत्त्व जानता हूँ, और इसीलिए एक लीडर वक्ताकी भाँति ठहर-ठहरकर बोलनेमें अभ्यस्त हूँ। वैसे दिनमें कुछ देर विश्रामके लिए रुक जाता हूँ। इस प्रकार वोलते-वोलते ही मेरा अन्त होना निश्चित है, यह मै जानता हूँ, फिर भी मेरा वोलवाला कहीं नही है।

मारकोनी दादाके समयसे लेकर अवतक मुझे उन्नतिका वहुत ही थोडा अवसर मिला है। अन्य व्यक्ति केवल वोलनेके जोरपर ही मेरे देखते-देखते कुछसे कुछ वन गये। पर मै जहाँ था वही हूँ। फिर भी मै अपने विधाताके विरुद्ध आवाज़ नही उठा सकता। इस दिशामे आज स्वाधीनताके युगमें भी मै पराधीन हूँ। पिछले महायुद्धमे तो मेरा मुँह भी वन्द कर दिया गया था और वर्षो तक मै चहारदीवारीके अन्धकारमय कैदख़ानेमें वन्द पडा रहा। आज़ादीके साथ-साथ उज्ज्वल भविष्यकी आशा हुई थी, पर मेरे जीवनमें न तो परिवर्तन होना था, न हुआ। वोलनेकी स्वतन्त्रता अवश्य मिल गयी, जिसके फलस्वरूप मै दिल खोलकर वोलने

लगा। चायका स्टाल, पानकी दूकान, नाईका सैलून, लॉण्डरी, गली-कूचा, घर-बाज़ार, मतलब यह कि घर-बाहर मैने ऐसा कोई स्थान नहीं छोड़ा जहाँ मै न बोला हूँ, और इतना बोला हूँ कि सुननेवाले पास-पडोसियोंके कान फूटकर 'इअर-नोज़-थ्रोट स्पैशलिस्ट'के यहाँ क्यू लगने लगे। कहीं-कही तो चिल्लाते-चिल्लाते मेरा गला तक बैठ गया है। फिर भी मै बोलता रहता हूँ। न समय देखता हूँ न स्थान, न विद्यार्थीका लिहाज़ करता हूँ, न बीमार पडोसीका, और न ही यह देखता हूँ कि किस समय और क्या बोलता हूँ क्योकि लोगोंका मनोरंजन करना मेरा धर्म है और बोलनेका मेरे पास 'लाइसेंस' है। पर जो वास्तवमें मै कहना चाहता हूँ वह कह नही पाता, जैसा कि बोलना चाहिए; बोल नही पाता, मै नहीं जानता कि ऐसा क्यो होता है, क्या इसलिए कि मै परावलम्बी हूँ, पर वह तो मेरी विवशता है।

मेरा जीवन भी एक करुण कहानी है। जो मुझपर गुज़री है, उसका वर्णन नही किया जा सकता। शायद मेरा बोलना ही मेरे लिए अभिशाप बन गया है जिसके कारण मै परतन्त्र हूँ और हमेशा रहूँगा।

कहते हैं पुराने जमानेमें मालिकके विरुद्ध कोई आवाज उठाता था तो उसकी जबान तलवारसे काट ली जाती थी। गणतन्त्रवादी युगमें जबान जबानसे काटी जाती है। क्योकि यह युग ही केवल मात्र ज़बानका है या कहिए जबानी युग है, लेकिन मैंने ऐसी कोई भी बात नही कही, फिर भी मै सदा वही हूँ और हर बार मुझसे कान उमेठकर ही बुलवाया जाता है।

वैसे मेरा नाम 'आकाशवाणी' होनेके नाते और मेरी वायु-शिराएँ सर्वव्यापी होनेके कारण मुझे नभाकाशी पर पृथ्वीपर विचरण करनेवाली गन्धर्वबालाओ और किन्नरोको लीलाओका भी थोडा-बहुत आभास मिलता रहता है। जब कोई किन्नरी मेरे सम्मुख आकर बैठती है तो मैं सूक्ष्म रूप धारण करके उसके धड़कते हृदयमें उतर जाता हूँ, लेकिन फिर

भी मुझे पता नही लग पाता कि यह सुमुखि अपने अनिमन्त्रित स्वरमें बाबा आदमके जमानेकी कोई चीज अलापनेका जो निरर्थक प्रयत्न कर रही है वह क्यो ? वैसे कई विख्यात महानुभाव, कई गले और बेगले-वाले कवि, कई बहुरूपिए नट, कई रीतिकालीन नायिकाओके सदृश छलना, ललना-कलाकारोसे मेरा नित्य ही साक्षात्कार होता रहता है और मैं सोचता हूँ कि काश मैं रेडियो न होता, ठण्डी-गरम साँसोसे, हृदयके उद्‌गारोसे, चटक-मटककर नाज-नखरोसे, नाम, ख्याति, पहुँच, सिफारिश-से मेरा कोई सम्बन्ध न होता। क्योकि मेरा शरीर काठका और हृदय लोहेका होते हुए भी शीशे-सा नाजुक है, जिसमे विद्युत्मय स्पन्दन है, अनुभूति है और इसीलिए कई बार मेरे अबोल हृदयमे इन सब बातोके कारण एक टीस-सी उठा करती है। वैसे एक सच्चे समालोचकके नाते मैं किसीका नाम नही लेना चाहता। न ही यह बताना चाहता हूँ कि अमुक व्यक्ति मेरे सामने अलापने, नाचने-बोलने या रोनेके लिए बार-बार क्यो आता है, फिर भी मुझे एक बातका खेद है।

जैसा कि आप जानते है, स्वतन्त्रता-प्राप्तिके उपरान्त सौन्दर्य-प्रति-योगिता, क्रिकेटके मैच, 'अमेरिकन फ़्री स्टाइलके बाउट', औद्योगिक तथा रेलवे नुमाइशों, कहानी प्रतियोगिता आदि अन्तर्राष्ट्रीय आयोजनोकी भाँति मेरे-द्वारा भी कुछ कालसे कवि-सम्मेलनोका आयोजन होने लगा है। पर उनमे केवल मात्र लब्धप्रतिष्ठ कवियोको ही आमन्त्रित किया जाता है जिनकी बडी पूँछ होती है। बेचारे उदीयमान कवि तो बिना पूँछके होनेके कारण सदा उपेक्षित ही रह जाते है। मै स्वभावसे मानव-वादी हूँ। इस-लिए मुझे यह बात अखरती है पर क्या करूँ – मेरे कान चालकोंके हाथ-मे होनेके कारण कह कुछ नही सकता, और अब तो एक रेडियो-पत्रिका भी प्रसारित होने लगी है लेकिन उसमे भी उन्ही लेखकोंकी नामावली विद्यमान है। मानो वह लेखक-मण्डली अपनेमे एक सीमा है जिसके बाहर कुछ है ही नही। जब यह सोचता हूँ तो सहसा मेरे अन्तर्चक्षुओके सामने

उन मासूम निरुत्साहित तरुण लेखकोकी शक्लें घूमने लगती है जो मुझ तक पहुँच न होनेके कारण मुझसे कोसो दूर है और भविष्यमे भी उनके पास आनेकी कोई सम्भावना नही दिखाई देती।

यह मेरी कहानीका एक विन्दुमात्र है। अतः इसे पूर्ण न समझें और साथ ही इसे 'आकाशवाणी'का प्रोग्राम भी न समझ बैठें।



कौओंकी मीटिंग

आदिम मनुष्यमें मीटिंग-जैसी बीमारीके कीटाणु नही थे। सर्वप्रथम सभ्यताके युगमें आकर 'मन्त्रणा' शब्दका प्रयोग सुननेमें आया, लेकिन मन्त्रणा राजा तथा उसके मन्त्रियो तक ही सीमित थी, पर आधुनिक युगमें आकर उसकी वह काया-पलट हुई कि वह आज 'मीटिंग' नामसे शासन और समाज-व्यवस्थामें एक ऐसी 'मास्टर की' (गुरु कुंजी) बन गयी है जिससे न केवल बडे-बडे अलीगढी ताले खोले जाते है बल्कि पेचीदा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओकी जटिल गिठाएँ भी खोली जाती है। गणतन्त्रके अन्तर्गत मीटिंगका इतना प्रचार हुआ कि मनुष्यको छोड़ पक्षी भी अपनी घरेलू और जातीय समस्याओका हल मीटिंग-द्वारा निकालनेके आदी हो गये है।

मनुष्यकी मीटिंगका समय चौबीस घण्टोंमें किसी भी समय और किसी भी स्थानपर हो सकता है। चाहे वह इम्पीरियल होटलके विशाल सभाकक्षमें हो, चाहे इण्डिया गेटकी हरी घासपर, चाहे गान्धी ग्राउण्डमें उखडी घास और उडती हुई धूलपर। यह तो रही बडी-बडी और बडे-बडे लोगोंकी मीटिंगकी बात, पर बाबू लोगोकी मीटिंग दफ्तरके बाहर या भीतर एक प्याला चाय और एक समोसेपर, जमादारोकी म्युनिसिपल हालके सामने, दूधवालोकी दूध बेचते जाते समय रास्तेमें एक ओर लगे हुए नलपर, कुँजडिनोकी सब्ज़ी मण्डीमें, मुण्डुओको रातको कामसे फारिग होकर 'फुटपाथ'पर बिजलीके खम्भेके नीचे एक जोड़ा ताशपर और किसी

स्त्रीके उसकी पडोसिनके दरवाजेके सामने कचरा डालनेपर परस्पर पुरेखा-पुरेखा तकका नामोच्चारण आरम्भ हो जाये और दो-चार पड़ोसी और दस-पाँच राह चलनेवाले उनके मर्मज्ञ पैतरोंको देखनेके लिए रुक जायें और इस तरह गलीमे एक अच्छी-खासी मीटिंग होने लगे तो ताज्जुब नही।

पढे-लिखे आदमियोकी मीटिंग आपने देखी होगी और उसमे सभी लोगोको एक साथ बोलते हुए देखकर आपको सब्जी मण्डीका आभास-सा होने लगा हो तो वह भी सम्भव है, सार्वजनिक टट्टियाँ बनवाने या कूडा उठाकर फेंकवाने या फिर कर्मचारियोका रुपये-दो रुपये वेतन बढानेके लिए जो दफ्तरी मीटिंगें होती है, उनसे भी आप परिचित है और इतने परिचित जितने स्वयं अपने-आपसे भी न होगे। लेकिन पक्षियोकी और उनमे भी खासतौरपर कौओकी मीटिंग देखनेका शायद आपको सौभाग्य प्राप्त नही हुआ होगा। हुआ भी होगा तो आपने उसे दुर्भाग्य समझकर छोड़ दिया होगा। रजाईमे दुबके हुए या फिर गरमियोंमें ठण्डी-ठण्डी हवामें बढती हुई सुस्तीके कारण करवट बदलते हुए आपने कौओकी 'काँव-काँव' सुनकर उन्हें कोसा हो तो आपने मानव-स्वभावके प्रतिकूल कोई काम नही किया। या आँगनमें लगे हुए पीपल, नीम या और किसी पेडपर एकत्र कौओको ताली बजा-बजाकर उडानेपर भी न उड़ते हुए देखकर गुस्सेमे यह भूल गये हो कि आप आदमी हैं और कुछ क्षणोके लिए आप भी उन्हीकी बिरादरीमें जा मिले हो तो भी आश्चर्यकी बात नही। तात्पर्य यह कि आपने गौतम बुद्धके वंशज होकर और राष्ट्रपितासे परोपकार और प्रीतिके सिद्धान्तकी सीख लेकर भी इन बिचारे समस्या-ग्रस्त कौओसे सहानुभूति नही दिखलायी। वैसे तो शायद आप नित्य चीटियोको खोजकर इस राशनके युगमे भी आटे और खाँडका मिक्स्चर डॉक्टरकी खुराककी भाँति रोज सुबह-शाम उन्हे देते होगे और एक अहिंसक होनेके नाते दो व्यक्तियोकी हाथापाई देखकर पिटते हुए व्यक्तिको अलग हटा उसे गम खानेका उपदेश देते हुए शानसे सिर उठाये एक तरफ

चल देते होंगे। इतना ही नहीं, आप किसी हरिजनको मन्दिरमें घुसते हुए देखकर या किसी तितलीके होठोंकी लाली और चुन्नीसे झाँकते हुए शरीरका उभार देखकर 'अंगूर खट्टे हैं' वाले भावको एकदम नाभि तक दबाकर ऊपरसे राम-रामका उच्चारण करते हुए सारी बुराई कलियुगके मत्थे मढने लगते होंगे, लेकिन ......

हाँ, तो बात कह रहा था कौओंकी मीटिंगकी और बहकने लगा दूसरी ही ओर। इसमे मेरा भी दोष नही क्योंकि मैं एक स्वतन्त्र नागरिक हूँ और अभी मेरे दिमागमे वह दृश्य भी ताजा है जो मैंने १२ सितम्बर १९४७ को दिल्ली स्टेशनके प्लेटफार्म नं० ३ पर – जहाँ फिरोजपुर जानेवाली गाडी खडी थी – देखा था। बात यह थी कि एक महानुभाव टी० टी० आई० से झगड रहे थे। पूछनेपर पता चला कि झगडनेवाले महानुभाव, जिन्हे २९ रोज बाद आज पता चला कि भारत आजाद हो गया है, फिरोजपुर जा रहे थे। इंजनसे गार्डके डिब्बे तक गाडी देख डाली, लेकिन एक फर्स्ट क्लासके डिब्बेको छोडकर अन्य सभी डिब्बे खचाखच भरे हुए थे जैसे किसी खानसामेकी साइकिलपर लटके हुए टोकरेमें चीं-चीं करते उलटे-सीधे मुरगे भरे हो। जब कुछ समझमें न आया तो वह जाकर उस फर्स्ट क्लासके डिब्बेमे इत्मीनानसे बैठ गये और वहाँ उन्होने अपना सामान नीचेवाली सीटोंपर इस प्रकार फैला दिया जिससे कोई और आकर न बैठ पाये। दूर खडा टी० टी० आई० यह तमाशा देख रहा था। जब वह टिकिट देखने आया तो भाई अकड पड़े। किस बातका टिकिट ? अब भी सरकारकी गाडी समझ बैठे हो ? देखते नही हम यहाँ पहले आकर बैठ गये हैं। हम आजाद है, अब वह अँगरेजोका जमाना भूल जाओ, बाबूजी ! टी० टी० आई० ने बहुत समझाया, उनकी दाढीको हाथ लगाया लेकिन जब वह अपनी स्वतन्त्रतापर अड़े रहे और उन्होंने किराया देनेसे इनकार कर दिया तब उन्हें लाल पगडी और खाक़ी वरदी-की मदद लेकर नीचे उतारा गया। मतलब यह कि अभी थोडे ही वर्ष

पूर्व स्वतन्त्रता पानेके कारण हमे अभी कुछ काल तक 'नाथ' की जरूरत है फिर चाहे 'नाथ' रस्सोंको हो या प्राणनाथ, कुटुम्बनाथ, समाजनाथ या राष्ट्रनाथके रूपमे हो।

यदि मै कहूँ कि इस दृष्टिसे हम कौओसे भी गये बीते है तो बुरा न मानिए क्योकि कौए कई वातोमे हम मनुष्योसे अच्छे है। हम आलसमें विस्तर ही में आठ वजा देते है और इसपर अगर विस्तरमें चाय समयपर न मिले तो सुवह-सुवह वीवीसे नोक-झोक शुरू हो जाती है जिसके फल-स्वरूप सारा दिन भूखे रहना पडता है। लेकिन कौआ अरुणोदयसे पहले ही पेडकी टहनीपर चोच साफ करके भैरवी अलापना आरम्भ कर देता है। फिर सवसे महत्त्वपूर्ण वात तो यह है कि वह अपनी सती-साध्वी पत्नीसे झगडता नही देखा गया। जव दोनो साथ दिखाई देते है तो प्यार करते हुए फिर कौए महाशय या श्रीमती कोई क्षण-भरके लिए भी एक-दूसरेको छोडनेके लिए तैयार नही। वावू साहव या ववुआइनकी भाँति नहीं कि मियाँ तो रूखी-सूखी तन्दूरकी रोटी और सरसोका उवला वासी साग खाकर डालडाका स्वाद लेते जल्दी-जल्दी बिना पैडल और फटीचर गद्दी-वाली साइकिलको हवाई जहाज वनाये उतरते-चढते दफ्तरकी चारदीवारी-मे दाखिल हो गये और ववुआइन वन-ठनकर चेहरेपर पाउडर मलकर होठोपर सुरखी लगाये आँखोमे कालिख पोते और किसी फिल्म एक्ट्रेस-वाली चाल-ढालसे वाजार या सिनेमा चल दी। शामको वावू साहव थके-माँदे अधिकारियोकी घुडकी खाये, दफ्तरी दुनियाको कोसते हुए, भाग्यपर खीझते हुए घर लौटे तो वेगम साहिवा मैली-कुचैली धोती पहने; माथेपर शिकन डाले स्वागतके लिए पहलेसे ही तैयार! वावू साहव आकर धवसे खाट या कुरसीपर वैठे-न-वैठे कि वेगमने त्यौरियाँ चढाकर नाक वहते हुए अपने वच्चेको दो चाँटे रसीद करके उनके सामने पटककर अपने भाग्यको, फिर अपने माँ-वापको और फिर वावू साहवके घरको जिसमें नौकरानी-सा सव काम करना पड़ता है, कोसना शुरू कर दिया।

इसपर अगर आँसू निकल पड़े तो वह भारतीय नारीके आभूषण हैं जिनके कारण गुप्तजीको 'साकेत'-जैसे महाकाव्यकी रचना करनी पडी। लेकिन कौआ और कौईमे यह वात नही है। यह तो जहाँ रहेगे वहाँ साथ-साथ। समानाधिकार माँगनेके लिए कोई 'कौई मण्डल' अथवा 'कौई लीग' की स्थापना करके कौओको नही ललकारती। यहाँतक कि प्रसवके वाद वच्चोकी देख-भाल कौआ-कौई मिलकर करते है। उनमे मियाँ-बीवीकी भाँति वच्चोको लेकर तड़प-झड़प नहीं होती।

पुरुषमे स्त्रीके प्रति वीरताका भाव होता है। क्योकि सभ्यताकी आड़मे अपनी स्त्रीके अतिरिक्त उसे अन्य स्त्रियोमे भी दिलचस्पी रहती है। पर कौआ इस मामलेमें एकदम रामके एक पत्नीव्रतका अनुयायी है। फिर भी उसमे पौरुष सुलभ यह प्रवृत्ति होती ही नही, ऐसा नही कहा जा सकता। क्योकि जव कोई दक्ष कौआ किसी मनचलेकी भाँति कनॉट प्लेसका स्वप्न देखता किसी अन्य कौएकी पत्नीसे प्रेमालाप करने फुदकता हुआ आता है तब बीसवी शताब्दीके सभ्य तथा प्रोत्साहनमूलक नारी-प्राधान्य जगमे रहते हुए भी पाश्चात्त्य सभ्यतासे प्रभावित न होनेके कारण उसका पति अपने समस्त बलका प्रयोग करके मरने-मारनेपर उतारू हो जाता है।

अब मीटिंगकी सुनिए। गणतन्त्रमे मानव-समाजके सभी कार्य-भारोको सँभालनेके लिए मीटिंगकी आवश्यकता हुई तो इतनी कि उसने टी० वी० के वुखारकी भाँति नियमित रूप और निश्चित समय ग्रहण कर लिया। जुकामकी भाँति वह चाहे जव नही होती, और मेहमानकी भाँति विना खवर दिये भी नही आ टपकती। कई मीटिंगोका दौरा महीनेमे एक वार या फिर हफ्तेमे एक वार नियत समयसे होता है। मीटिंगमे उन सभी समस्याओपर विचार किया जाता है जिनपर गणतन्त्र या प्रजातन्त्रके सिद्धान्तोकी पावन्दीके कारण कोई भी एक व्यक्ति अकेला विचार नही कर सकता, कर भी सकता है तो कमसे कम खानापूरी करनेके लिए

मीटिंग बुलाना आवश्यक हो जाता है।

कौओंकी भी कुछ समस्याएँ हैं जिनपर विचार करनेके लिए उन्हे पूर्ण रूपसे तैयारी करनी पडती हैं। वैसे तो छोटी-मोटी बातोंके लिए रोज सुबह-शाम किसी ऊँचे-से छायादार पेडपर मीटिंग हुआ करती है और उन मीटिंगोके रोज-रोज होनेका कारण भी मनुष्य-सा ही स्वाभाविक है। जब सिरधारी मनुष्यकी कोई एक समस्या किसी भी एक मीटिंगमे हल न हो पाती तो भला दुमधारी कौए तो फिर कौए ही हैं। इसीलिए जब सर्वप्रथम ईश्वरने कौओका किसी अन्धेरी रातमे निर्माण किया तो अपने काले रंग और कर्ण-मधुर काँव-काँवपर शायद उन्हे कुछ इतराज रहा हो। अतः सब कौओने मिलकर ईश्वरके पास डेपुटेशन भेजनेके लिए एक मीटिंग बुलायी पर जब अपना-अपना मत प्रकट करनेका समय आया तो कोई भी धैर्यसे दूसरेको सुनने-समझनेवाला न था। परिणाम यह हुआ कि सभी कौए चारो ओरसे काँव-काँव करने लगे। बस तभीसे कौओकी यह सुबह-शामकी मीटिंगकी परम्परा चली आ रही है और किसी निर्णयपर न पहुँचनेके अनन्त काल तक चलती रहेगी।

इन दैनिक मीटिंगोके अतिरिक्त मानव जीवनकी भाँति कौआ-जीवनमे भी कुछ ऐसी घटनाएँ जनखोकी भाँति बलखाती धरना देने आ जाती है जिनसे निपटारा पानेके लिए आकस्मिक मीटिंग बुलाना आवश्यक हो जाता है।

एक समयकी बात है। सुबह साढे पाँच बजेके लगभग मै लोदी गार्डन-की ओर घूमने जा रहा था। रास्तेमे एक नीमका विशालकाय और शीतल-च्छाय पेड है। उसीपर कौओकी एक आकस्मिक मीटिंग हो रही थी। आकस्मिक इसलिए कि प्रायः सभी कौए घबराये हुए काँव-काँवकी कातर पुकार दूर-दूर तक पहुँचा, इधर-उधर उडकर अन्य कौओको बुलाकर फिर पेडपर आ बैठते थे। कौओकी यह धाँधलेबाजी देखकर मैने समझा कि मीटिंगमे अभी देर है। क्योकि समयकी पाबन्दीके मामलेमे कौए भी तो

हिन्दुस्तानी ही साबित होंगे और इसलिए बहुत मुमकिन है कि सदस्य कौए निश्चित समयपर न पहुँच पायें। पेडसे थोडी दूर हटकर मैं पुलिया-पर बैठ गया। कौओंका जमाव बढ रहा था। दूर-दूरसे आकर कौए उस नीम-भवनमें एकत्र हो रहे थे। मीटिंगका 'एजेण्डा' क्या था यह मेरी समझमें न आया, पर समस्त परिस्थितिका अध्ययन करके मैंने जो पता लगाया वह यह था कि जिस पेड़पर मीटिंग हो रही थी, उसकी फुनगीपर किसी कौए महाशयकी पर्णकुटी थी जो उन्होंने बडी मेहनतसे बिना ब्लैक मार्केटकी कमाई लगाये बनायी थी। लेकिन अब जब श्रीमती कौईको बच्चा होनेवाला था, गार्डनके अधिकारियोंमें-से किसीका आदेश पाकर मालीने उस पेडकी दो-चार टहनियाँ काट डाली जिससे वह नीमका पेड किसी मोटे व्यापारी लाला, साहु या सेठकी भाँति छोटे-छोटे स्वजातीय व्यापारियोकी बढतीमें एकदम पूर्ण विराम न बन जाये। कौई बेचारी जो प्रसव-वेदनासे पीडित 'सेण्टर' की नर्सके यहाँ मेहमान आ जानेके कारण घोसलेमें अकेली दुबकी बैठी थी, यह दृश्य देखकर इस बुरी तरहसे चिल्लायी कि कोई महाशय जो दूर किसी क्वार्टरकी छतपर बैठे गरदन टेढी-मेढी करके छतपर सूखनेके लिए फैलायी हुई कचहरियोंपर धावा बोलनेके लिए अँगरेजी पैतरा बदल रहे थे, कौईकी कातर पुकार सुनकर फडफडाकर भागे और मियाँ बीवीने मिलकर 'काँव-काँव' 'आँव-आँव'की वह रट लगायी कि बिना तारके तारसे ही सब कौओं तक भय-सूचना पहुँच गयी और कौओंकी अखिल भारतीय नही तो अखिल लोदी-रोडीय सभा उस पेड़पर बैठी। सभापति कौन बनाया गया यह नही कह सकता, पर इतना अवश्य याद है कि जो कौआ 'झगडज्ञ' और सबसे अधिक बोलने-वाला यानी 'मेरी मुरगीकी तीन टाँग' की रट लगानेवाला था, अन्तमें वही सभापतिके स्थानपर आसीन हुआ। सभाके सम्मुख जो सर्वप्रथम प्रश्न रखा गया और जो मैं समझ पाया वह था सरकारकी पेड़ोंकी काँट-छाँटवाली नीतिपर विचार करना और माली वर्गका बिना सरकारी

आज्ञाके चुराकर पेड़ोंकी टहनियाँ काटकर तथा उन्हें अधिकारियोंकी नजरसे बचानेके लिए झाडियोके पीछे सुखाकर ईंधनका काम चलाना जिसके कारण पेड़ उजाड हो जानेसे 'कौईस्तान' खतरेमें होनेकी सम्भावना थी।

दूसरा प्रश्न सभाके सम्मुख, जो एक फुदकते हुए कौएने, जिसे खाद्य-सम्बन्धी विदेशी जानकारी हासिल थी, रखा वह था – सडे-गले मासका सड़कपर न फेंके जानेका नगरपालिकाकी ओरसे मास-विक्रेताओंको आदेश। नगरपालिकाका कहना था कि ऐसा करनेसे कचरेके डिब्बोकी मक्खियाँ उड़-उडकर उनपर जा बैठती हैं जिनसे सारे शहरमे बीमारी फैल जाती हैं। नगरपालिकाकी इस नीतिसे कौओकी खाद्य स्थितिको खासा धक्का लगा था। इसपर सदस्योमें इतना वाद-विवाद चला कि समस्त विषय ही हिन्दू कोड बिल बन गया। सभी कौओके एक साथ मत प्रकट करनेके कारण वह नीमका पेड एक अच्छा खासा रामलीला ग्राउण्ड बन गया। अन्तर इतना ही था कि वहाँ औरतोको धक्के खाने पडते हैं पर यहाँ कोई वर्गकी प्रतिष्ठा सुरक्षित थी। सभाकी अव्यवस्था, कौओंका उतावलापन, अनुशासनका अभाव और साधारण शिष्टाचार-हीनता देखकर मैंने सोचा – काश मैं कौआ होता। तो इन कौओका नये सिरेसे सगठन करके उन्हे गणतन्त्रके वास्तविक सिद्धान्तोके अनुसार सभा आदिका सचालन करना सिखाता। लेकिन काश! और काशका विचार मनमें आते ही मुझे एक कविता याद आयी 'काश कि मै पत्थर होता' और विचारोका ताँता बँध गया, फूल होता, लिपस्टिक होता, छोटा-सा मखमली सैण्डल होता, रूमाल होता, हैण्डबैग होता और न जाने क्या-क्या होता और क्या-क्या न होता; और मान भी लिया जाये कि यदि मैं कौआ होता तो क्या होता? कौओको आदमी बना पाता और फिर कौए आदमी बन भी जाते तो सृष्टिकी कमीकी पूर्ति करनेके लिए मनुष्यको कौआ बनना पड़ता, फिर चाहे मनुष्य अपनी विशेषताओंके कारण सफ़ेद कौआ बनता या सिर-

पर एक सफेद दुम लगा देता जिससे साधारण कौएसे मानवी कौए पहचाननेमें सुभीता हो और यों देखा जाये तो इस वर्गीकरणकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि शकल-सूरतसे कौए-जैसा न दिखाई देनेपर भी मनुष्य कौआ हो सकता है क्योंकि अब तो विज्ञानने भी प्रमाणित कर दिया है कि कोई भी वस्तु जैसी दिखाई देती है उसका वही रूप नहीं होता। अतः अगर मनुष्य होते हुए भी कभी कौए प्रमाणित हो जायें तो आपको आश्चर्य न होना चाहिए, या मनुष्योंकी मीटिंग कौओंकी मीटिंग-सी जान पड़े या वास्तविकतामें ठीक वैसी ही हो तो भी चकित होनेकी बात नहीं



बिमोल दादा : एक सन्तुलन

मुतवातर नौ इतवारोंका बोझा सिरपर लादे देवीजीकी अविराम लताडोके बावजूद मै सिर खुजाता हुआ चारपाईपर सीधा लेटा तो कई उलटे विचार मेरे मस्तिष्कमे दाखिल होने लगे। 'बच्चन'के गीत 'आहि-आहिपर उठता जोवन'से अनभिज्ञ अपने बालोको अपनी ही उँगलियोसे सहलाता मै सोचने लगा कि हाइड्रोजन बमके विपयमें उदासीन ब्रह्म-अण्डके अण्डासनपर आसीन भगवान्ने अपने लिए तो नाना साफ-सुथरा मुखारविन्द लिया, पर बेचारे मरदोके मत्थे सिरसे ठोडी तक बाल मढ दिये। (यह मैं फोटो-देखी बात कह रहा हूँ। क्योकि ब्रह्मा, अग्नि और यत्र-तत्र भोले बाबाके सिवा देवताओको नारी और पुरुषके सम्मिलित रूपमें ही चित्रोमें अंकित किया गया है) इसका कारण या तो पुरुप कलाकारोकी नारीत्वके प्रति आसक्ति होगी या फिर देवियोके निरन्तर अनुरोध और डॉट-डपटके फलस्वरूप वैकुण्ठ-कैलासमें 'रजनीके पिछले पहरोमे' 'भारत ब्लेड' चलता होगा अथवा देवताओको कोई ऐसा कैमीकल-फॉर्मूला पता होगा जो बाल-सफासे भी अधिक चमत्कारी होगा।

भगवान्की याद आते ही मेरी जड उँगलियोके नीचे चेतनता बिल-बिलाने लगी। उँगलियोंकी नोककी पकडमें जो कुछ आया वह इतना नगण्य था कि उसके लिए मैंने सिर खुजाते हुए भी सिर खुजानेकी जरूरत नहीं समझी, क्योकि घरकी सबलाकी डिक्टेटरशिपमें उस छोटे-से अस्तित्वके लिए डेमोक्रेसीके नामपर पर्याप्त स्थान होते हुए भी महत्त्व नहीं था और

चूँकि एक प्रतिष्ठित घरवालेके नाते मैं उनकी धारणाओंके बाहर नहीं हूँ, मेरे लिए उस ओर दुर्लक्ष करना ही श्रेयस्कर था।

हाँ, तो बाल कटवानेका विचार करते-करते सॉयकोलॉजीके तत्त्वकी दुहाई दे-देकर विपयान्तरकारी किसी बहुश्रुत और अँगरेजीमें पैरका अँगूठा अडाये हुए किसी स्वयंसिद्ध, स्वयम्भू देशी लेखककी भाँति मैं बालोंको छोड ब्रह्म और अण्डके सजोगसे बने हुए 'ब्रह्माण्ड'पर सोचने लगा। स्वाभाविक था कि मेरे अण्डाकार चिकने मस्तिष्कको मुर्गीके अण्डेसे लेकर 'इस्कूल'में पाण्डे साहव-द्वारा हिसावमे दिया हुआ अण्डा और उसके फलस्वरूप घर-पर पीठपर खाया हुआ डण्डा याद आता, मुझे लगा जैसे इस सृष्टिके सभी व्यापार अण्डमय हैं – मिथ्या है, दुनियाका आरम्भ और अन्त दोनो अण्डा है। जब दोनो अण्डा ही है तो योगफल क्या हुआ? अमीर खुसरोकी मुकरियोके लहजेमे आप लपककर झटसे कहेंगे 'अण्डा'। पर विज्ञान वताता है और दुनिया जानती है कि दो तत्त्वोके संयोगसे तीसरी वस्तु निर्मित होती है। वरना पंचभूतोसे आदमी कैसे बनता और हम सब मिलाकर घरमें तीन जने कैसे होते। मस्तिष्कमें इस सत्यका प्रकाश पडते ही नाईके उस्तरे और अपने वालोका परस्पर सम्बन्ध मेरी समझमें आ गया। जिसे वेगम मुतवातर चार हफ्तोसे समझानेमे ज़मीन खोदे हुए थी। नाईके उस्तरेकी पैनी धार और हिन्दीके सुकोमल कवि पन्तकी 'वाला' जनित वाल मेरे 'मृदुमन्द कोमल लोल तन्द्रिल कमनीय नयन'के सामने मधुर-मधुर थिरकने लगे और मैं दोनों हाथोसे तकिएको सीनेसे चिपकाये उस कल्पना-लोककी स्वप्निल वालाके लावण्यके सम्मोहन-जालमें तरल होकर ऊँघने लगा।

सुवह उठा तो मेरा अचेतन मन (वैसे मेरा नाम चेता होनेके वावजूद चंचलाकी अम्मा मुझे सुहागरातसे लेकर आज दक्षिण दिल्ली नगर-पालिकामें चंचलाका जनक दर्ज होनेपर भी अचेता ही कहती हैं) तय कर चुका था कि मेरे वाँसके ज़ंगलोसे घने और मेरे अजीज फतेहसिंहकी कीक-

चूँकि एक प्रतिष्ठित घरवालेके नाते मैं उनकी धारणाओंके वाहर नही हूँ, मेरे लिए उस ओर दुर्लक्ष करना ही श्रेयस्कर था।

हाँ, तो वाल कटवानेका विचार करते-करते साँयकोलॉजीके तत्त्वकी दुहाई दे-देकर विपयान्तरकारी किसी वहुश्रुत और अँगरेजीमें पैरका अँगूठा अड़ाये हुए किसी स्वयंसिद्ध, स्वयम्भू देशी लेखककी भाँति मैं वालोंको छोड़ ब्रह्म और अण्डके सजोगसे वने हुए 'ब्रह्माण्ड'पर सोचने लगा। स्वाभाविक था कि मेरे अण्डाकार चिकने मस्तिष्कको मुर्गीके अण्डेसे लेकर 'इस्कूल'में पाण्डे साहव-द्वारा हिसावमे दिया हुआ अण्डा और उसके फलस्वरूप घर-पर पीठपर खाया हुआ डण्डा याद आता, मुझे लगा जैसे इस सृष्टिके सभी व्यापार अण्डमय हैं – मिथ्या हैं, दुनियाका आरम्भ और अन्त दोनों अण्डा हैं। जव दोनो अण्डा ही है तो योगफल क्या हुआ? अमीर खुसरोकी मुकरियोके लहजेमें आप लपककर झटसे कहेंगे 'अण्डा'। पर विज्ञान वताता है और दुनिया जानती है कि दो तत्त्वोके संयोगसे तीसरी वस्तु निर्मित होती है। वरना पंचभूतोसे आदमो कैसे वनता और हम सव मिलाकर घरमें तीन जने कैसे होते। मस्तिष्कमें इस सत्यका प्रकाश पडते ही नाईके उस्तरे और अपने वालोका परस्पर सम्वन्ध मेरी समझमें आ गया। जिसे वेगम मुतवातर चार हफ्तोसे समझानेमें जमीन खोदे हुए थी। नाईके उस्तरेकी पैनी धार और हिन्दीके सुकोमल कवि पन्तकी 'वाला' जनित वाल मेरे 'मृदुमन्द कोमल लोल तन्द्रिल कमनीय नयन'के सामने मधुर-मधुर थिरकने लगे और मै दोनो हाथोसे तकिएको सीनेसे चिपकाये उस कल्पना-लोककी स्वप्निल वालाके लावण्यके सम्मोहन-जालमें तरल होकर ऊँघने लगा।

सुवह उठा तो मेरा अचेतन मन (वैसे मेरा नाम चेता होनेके वावजूद चंचलाकी अम्मा मुझे सुहागरातसे लेकर आज दक्षिण दिल्ली नगर-पालिकामें चंचलाका जनक दर्ज होनेपर भी अचेता ही कहती है) तय कर चुका था कि मेरे बाँसके जंगलोसे घने और मेरे अजीज फ़तेहसिंहकी कीऊ-

ट्रीटेड दाढीकी भाँति चिक्कन निराकार बालोको कुछ आकार मिलना चाहिए। क्योकि निराकारकी उपासना करते हुए भी साकार शक्तिसे चौबीस घण्टेका साक्षात्कार भुलाया नही जा सकता। मैंने उलटे हाथोसे आँखें मलते हुए स्लीपरोंमें चरण-कमल अटकाये और नीचे बाज़ारमें मास्टर नन्नेके सैलूनमें दाखिल हो गया। नन्नेका सैलून किसी भी बॉम्बे रिटर्न नाईके सैलूनकी भाँति था। मसलन उनका अपना एक फुल-साइज-का फोटो घुटनोपर दोनो हाथ जमायेवाली पोज़मे दीवारपर टँगा था। नन्नेका पोज किसी भी फिल्मी एक्टरसे कम न था, ज्यादा हो तो कह नही सकता, क्योकि इस बातका फैसला करनेके लिए मुझे मैट्रिकमें अटके हुए सिनेमा-विशेषज्ञ एवं जनरल नॉलेजमे पटु अपने छोटे भाई साहबको तलब करना पडेगा। फोटोमे 'डिग्निटी ऑव लेवर' इतनी अधिक थी मानो मास्टर नन्ने जता रहे हों कि केवल 'नन्ने नाऊ'की ही जाति ऐसी है जो सन्त्रीसे लेकर मन्त्री तककी हजामत कर सकती है। उस फोटोको देखकर मुझे लगा कि सिर्फ कविका ही काम ऐसा है जो न तो डिग्निटीमे आता है और न लेवरमें कहा जाता है, क्योकि 'उमडकर आँखोसे चुपचाप बही होगी कविता अनजान' और 'मै रोया तुम कहते हो गाना, मै फूट पडा तुम कहते छन्द बनाना'के अनुसार काव्यकी सर्जनाके लिए लेबर नही करनी पड़ी। केवल नजला होनेसे भी कविता उमड सकती है। अन्य दीवारोपर अँगरेज़ी कट, फ्रेंच कट, जर्मन कट, लेनिन कट आदि कटोके चौखटे जुडे हुए थे। कटोके उन मुण्डकटोको देखकर कमसे कम मुझ-जैसेके लिए श्रीमतीजीकी गैरहाजिरीमे कौन-सा कट करवाया जाये, यह तय करना असम्भव था। दूकानमे कुछ 'पतली कमरिया, तिरछी नजरिया'की भी तसवीरें थी, जिन्हें देखकर किसी भी मनचलेका मन परकटे कबूतरकी भाँति फडफडाये बिना न रहता। इस माहौलमें भला नन्ने भाई रेडियोको कैसे भूल सकते थे? अत उसका होना उतना ही जरूरी था जितना किसी फंक्शनके उद्घाटनके लिए मिनिस्टरका होना और वह एक कोनेमे

दीवारपर चढा 'सूर-सूर तुलसी ससी, उडगन केसवदास। अबके कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास' वाले राजधानीके सूरमा कलाकारोंको प्रकाशित करनेके लिए बुरी तरह गला फाड रहा था।

दूकानमें ग्राहकोकी संख्या अधिक होनेके कारण मै अपना नम्बर लगाये बिना ही अनम्बरित कुरसीपर बैठ गया। सामने बिखरे हुए अखबारमे छपे बाबूजीके व्यंग्य-चित्रसे अपना तादात्म्य स्थापित करता हुआ मैं मास्टर नन्नेकी करामात ध्यानसे देखने लगा। कलाकार नन्ने बल खाये, गरदन झुकाये, आँखे गडाये, देवीजीकी पैनी जबानकी तरह कटाकट-कटाकट कैंची चलाकर बालोको एडिट कर रहे थे। बडी लखनवी नजाकतसे ग्राहकके गाल मलकर और ठोढीपर हाथ फेरकर हजामतको फिनिशिंग-टच् देकर नन्नेने अपना काम खत्म किया। कुरसी खाली होते ही मै अपने मित्र लालासिंहकी लटपटी चाल और अटपटे ढंगसे कुरसीपर लपककर बैठ गया। इतनेमे एक साहब जो नम्बरमें मुझसे पहले और बालोकी बढानमे मेरे आगे थे तथा अबतक बंकिमके किसी नॉवेलपर झुके पढनेके नामपर ऊँघ रहे थे, हडबडाकर फट पडे – "ना ना, बाबा। तुमि तो खूब भालो लोक। आमी तोमार चेए आगे एशेछिलाम। हे भोगोबान। आमादेर कोलकाताय ए रकम होय ना।" इतना कहकर आँखें तरेरे सब्जीवालेकी बहँगीकी तरह हचकोले खाते वे कुरसीकी ओर ततैया काटे-से बढे। उनके प्रचण्ड व्यक्तित्व, कन्धोपर झूलते बाल और सीनेको चुभती दाढीका गीदडावलोकन करते ही मुझे यकीन हो गया कि वाममार्गी यानी अपने बायें हाथ चलनेवाला मै लालासिहके सीधे मरदाने ढग इस्तेमाल करनेमे सर्वथा असमर्थ हूँ। मैने बगलें झाँकते हुए सीट खाली कर दी। मेरे वाक्वीर नायकको अपनी अनपेक्षित विजयपर गर्व हुआ होगा, क्योंकि वे कुरसीपर फँसकर बैठ गये थे और डाढीपर हाथ फेरते हुए कोई बंगला गीत गुनगुनाने लगे थे। इधर मेरा मन उनके बालोसे निकलकर डाढीमें अटका कवीन्द्रको श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा था। इस एपिसोडमें मेरे

नारीय एप्रोचपर वे अवश्य आसक्त हुए होंगे, क्योकि वाल कटवाते समय उन्होने कई वार मुलायमियतसे मेरी ओर कनखियोसे देखा था। अपने राम भी कुतूहलसे भरे बैठे थे, क्योकि उनकी हुलियासे साफ दिखाई देता था कि वे भले ही रवीन्द्रकी कोटिके न हों, पर है अवश्य कोई महान् कलाकार, और चूँकि मै बंगाली आर्टको चेहरेको दो हिस्सोमें विभाजित करनेवाली लम्बी आँखोपर शुरूसे ही लट्टू हूँ, मेरे हृदयमें उनके प्रति अनायास ही धाक-मिश्रित औत्सुक्य उमड़ पडा। उनके वालोका डील-डौल देखकर मै समझा था कि उनके वाल काटनेमें नन्ने मियाँको काफ़ी देर लगेगी, पर लगभग दस मिनिटमे ही वे फारिग होकर उठ खडे हुए। श्रीमतीजीके आदेशानुसार जहाँ मेरे नये उगे हुए वालोकी जडमें उस्तरा चलानेके लिए पूरा आधा घण्टा लगता है वहाँ उनका दस मिनिटोमे ही वाल कटवाना मेरी समझमें नही आया। वादमे मैने जाना कि एक उच्च कलाकारको लापरवाही प्रदर्शित करनेके लिए वे वाल कटवाकर भी नहीं कटवाते थे। आपको यकीन न हो तो दिल्ली रेडियोके किसी भी मरद आर्टिस्टको देख लीजिए, ढीला लखनवी पैजामा, लम्बा वंगाली कुरता, (सर्दी हुई तो जवाहर वास्केट) अस्त-व्यस्त विखरे वाल, और किसी गहन दर्शनमे चढो तन्द्रिल आँखें मेरे कथनकी पुष्टि करेंगी। वाल झाडनेके लिए मेरे टाइगरकी तरह (टाइगर मेरे कुत्तेका नाम है) शरीर झाडकर वे मेरी ओर बढे "क्षमा कीजिए, मुझे जल्दी थी, रेडियोकी नौकरी ही ऐसी है।" उन्होने वडी नम्रतासे अँगरेज़ीमें वताया और ताम्बूलसिक्त होठोको सिकोडा, फैलाया। मेरे मित्र रेडियोमे है यह जानकर मेरी तो बोलती ही बन्द हो गयी और मैं उन्हीकी वात दोहरा वैठा – "रेडियो-मे है ?"

वे गरजे, "जी वंगालीमे खवरें सुनानेवाला विमोलचन्द्र चट्टोपाध्याय मैं ही हूँ," उनके हाथपर अपनी पसीजी हथेली रखते हुए मैं हक-लाया, "वडी खुशी हुई आपसे मिलकर विमल दादा।" मुझे सुधारते

हुए उन्होंने कहा "विमोल दादा।" विमोलके 'औ' को हलन्त करके मैं अनजाने ही 'ओ' का अण्डा निगल गया था और वह मानो उनके हलकमें अटका मेरे उच्चारणको सुधार रहा था। अवसरको पकड़ने और अपनी धाक जमानेके लिए मैंने कहा, "मैं भी लेखक हूँ, बनारसीदास द्विवेदीके नीचे लिखता रहा हूँ। राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्तसे मैंने कविता सीखी है तथा 'पंचवटी' की "कटिके नीचे चिकुर जालमें उलझ रहा था बायाँ हाथ" उक्तिमें सौन्दर्यवादपर विद्यागुप्त चन्द्रालकारके नीचे गढवाली पद्यमें रिसर्च कर रहा हूँ। हजारीप्रसाद चतुर्वेदीका शागिर्द हूँ, बुद्धेन्द्रकुमारके दर्शनपर मैंने पर्याप्त विचार किया है। वच्चनके साथ लगभग रोज चाय पीता हूँ, कोविन्ददासके नामसे नाटक लिखता हूँ और कुमित्रानन्दन पन्तके बालोंके लिए लोमा तेल मैं ही सप्लाई करता हूँ, फिर भी रेडियो-पर मेरी आवाज अभीतक चंचलाकी अम्माने नहीं सुनी। आप मेरी मदद करेंगे?" – मैंने गिड़गिडाते हुए मुँहसे थूक उडाते हुए पूछा। मुझसे शामको मिलनेके लिए कहकर अपना पता बताते हुए उन्होंने सुँघनी चढाते हुए विदा ली और मैं रेडियोपर बोलनेके स्वप्नमें बडबड़ाता हुआ ऐंठा-सा बाल कटवाने बैठ गया। दूकानमें लगे कटोंके अजायबघरको देखकर मैंने सोचा कि अबकी बार कोई कट कटवाया जाये, क्योंकि अब-तक मैं मुण्डन संस्कारकी रूढिका ही पालन करता आ रहा था। बचपनमें और लडकोंकी देखा-देखी मैंने एक बार अयोध्यासिंहसे, जो हमारा खान-दानी नाई था तथा आजीवन देशी उस्तरेसे ही हजामत करता आ रहा था, अँगरेज़ी ढंगसे बाल काटनेको ज़िद अवश्य की थी, जिसके फलस्वरूप नाईके हाथकी चपत और बूढे दादा-द्वारा दी गयी माँकी गालीके बावजूद दरवाज़ेकी आड़से मातजीके बीचमें पड़नेके कारण मेरे सिरपर कौवा रख दिया गया था यानी सामने मुट्ठी-भर बाल छोडकर बाकी सिरपर उस्तरा फेर दिया गया था। यह दूसरी बात है कि मैं उस दिन स्कूलमें लड़कोंके मनोरंजनका विषय बन गया और तंग आकर उसी दिन शामको

अपनी बड़ी बहनकी सहायतासे, जो मैंने पेड़से अमरूद तोड़कर ला देनेके बदलेमें गिड़गिडाकर प्राप्त की थी, और पिताजीकी मूँछें छाँटनेके लिए आलेमें रखी हुई कैंचीकी करामातसे वह कौवा साफ उडा गया था।

अँगरेजी बाल कटवानेके बाद घर पहुँचकर जो जवाब-तलबी आलोचन-विमोचन और पर्यायवाचन हुआ उसका हवाला श्रीमतीजीकी पुरानी साड़ीके परदेके पीछे ही रहने दीजिए।

शामको बन-सँवरकर बालोंको कड़वे तेलमें भिगोकर श्रीमतीजीकी बाल-गुम्फित कघीसे बाल सँवारकर मलमलका निर्मल कुरता पहने बल खाता विमोल दादाके शान्ति-कुटीरपर पहुँचा। कुटीर दर्भोकी न होकर सीमेण्ट-कांक्रीटकी दुमजिला इमारत थी जिसपर इमरती-सी नक्काशीका काम था। कुटीरके सामनेके काननको देखकर तुलसीकी पुष्पवाटिकासे लेकर मुलगाँवकरके कनवर्टेड चित्रोंकी पर्वटेड पार्श्वभूमिका आभास होता था। कुटीरके ओसारेमें बाँसके चौकीनुमा चार आसन फैले हुए थे और कुशासनोंकी जगह उनपर स्नेह-मण्डित मड़ियाँ बिछी हुई थी। धोतीधारियोंके लिए एक ओर तख्तपर मैली चाँदनी बिछी हुई थी और मसनद लगी हुई थी। सामनेवाली दीवारपर रवीन्द्रका पोर्ट्रेट लगा हुआ था। अन्य दीवारोंपर भी नृत्य-मुद्राओंमें अंगनाओंके साँग चित्र थे। कुटीरके सिंहद्वारपर यानी बाँसके छोटे-से फाटकपर पहुँचकर मैं काननमें हाथमें छोटी-सी बेंतकी टोकरी लिये पुष्प-चयन करती हुई महिलाको देखकर सहम गया। महिला ढाकाकी लाल किनारीकी सफेद साडी पहने पुष्पचयन कर रही थी। उनके महावरसे रँगे पद-विन्यासपर उनके आँचलके छोरमें बँधा चाबियोंका गुच्छा खनखनाकर पद-विन्यासमें घुँघरूका साथ देता-सा प्रतीत हो रहा था। उनकी पीठ मेरी ओर थी, अतः उन्हें निहारकर देखनेमें मैं एक सभ्य आदमीके ओसानसे काम ले रहा था। तभी पडोसवाले मकानपर-से एक महाशयको अपनी ओर घूरते देखकर मेरे पैरोंके नीचेसे ज़मीन खिसक गयी और महिलाका मुखारविन्द अपनी ओर

मोडनेके लिए मैने खाँसकर सकुचाते हुए पूछा, "त्रिमोल दादा यहीं रहते हैं ?" महिलाने गलेमे आँचल डालकर सकारात्मक स्मित किया और कुटीरके मिलनकक्ष (ड्राईंग रूम) की ओर उन्मुख होकर "शोनो" कहकर पुकारा। उनका पुकारना था कि बिमोल दादा बरामदेमें अवतीर्ण हुए और मुझे देखते ही "एसो एसो दादा, की खबोर"का जयनाद करते हुए नाचते-से काननमें उतर आये। बडी हार्दिकतासे मेरी पीठपर हाथ रखते हुए उन्होने महिलाकी ओर उन्मुख होकर मेरा परिचय कराया – "कोल्पोना, आमार स्त्री" और अपना ताम्बूल-सिक्त मुँह फाडकर चौवीसो दाँत निपोरते हुए झटके-से शालको पृष्ठगामी किया।

मिलन-कक्षमें नुभाप, सुहास, अजय, सुनीता, आरती, वीना, मीना, रोजनीगन्धा और भारतीसे परिचय हुआ। ये सब विमोल दादा और कोल्पोनाजीके सन् '४८ से लेकर '५७ तकके संस्करण थे। सन् '५८ का मॉडल डिक्लेअर होनेमें अभी कसर थी। भारती उनकी सबसे छोटी दुहिता थी। मीनाका गीत, वीनाकी वीणा, आरतीके चित्र और भारती-का नृत्य देखनेके बाद अजयकी चुनी हुई जंगली लकडियोका प्रदर्शन हुआ। उन लकडियोंमे कुत्ते, बिल्ली आदिकी आकृतियोका आरोपण देखकर मुझे अलंकार मजूषा याद आ गयी और 'परभाकर' परीक्षामे बैठनेवाली एक छात्राका स्मरण हो आया जो शास्त्रीजीके आदेशानुसार बरतन माँजते-माँजते प्रत्येक रगडके साथ 'चार हो रेफ तो स्त्रग्वणी छन्द है' रटा करती थी। ललित एवं वाक्कलाकी प्रयोग-चर्चा समाप्त होते ही विमोल दादा पूछ बैठे "की खाबे ?" मै समझा खाना खानेके लिए कह रहे है, अतः कृतकृत्य होते हुए मैने कहा, "खाना तो मै रातको खाता हूँ और वह भी मूँगकी दालकी खिचडी। हाँ, चाय पी लूँगा।" "भालो, भालो चा खाबो, चा खाबो।" तब मै समझा कि बंगलामें खाने-पीने, सूँघने, सबको खाना कहते है फिर चाहे रोटी-तमाखू, सिगरेट, चाय-पानी-कुछ भी हो।

कुछ देर बाद बंगाल पौटरीजके प्यालोमे चाय लिये कोल्पोनाजीने प्रवेश किया और बंगाल केमिकलके 'जवा कुसुम हेअर आइल'की गन्धसे कमरा भर गया। बातचीतके दौरान दादाने बताया कि उनकी पत्नी गत दस वर्षोसे (यानी विवाहके एक वर्ष पूर्वसे) 'गीतांजलि'मे साम्यवाद तलाश कर रही है। विमोल दादा अपनेको टैगोर-खानदानसे सम्बन्धित बताया करते थे। वे उदयशकरके शागिर्द है तथा इस चढती उम्र और उतरती जवानीके बावजूद मृदंग-नृत्यमे पटु है। चित्रकारीमे रोविन्द्रके अनुयायी है। उनके कुछ चित्र, जैसे छोटा घोडा, काणा कौवा, मछली तितली, पारिजात, मूसा बैल, सारस, कमरेकी दीवारपर लटके हुए है। चर्चाका विषय कलासे पलटकर साहित्यकी ओर बढते ही दादाने बताया कि उन्होने बग भाषामे कई गीत छाया, स्वप्न और निद्रापर लिखे हैं। उनका अखण्ड विश्वास है कि शरद्‌बाबू और बकिम साहित्याकाशके 'एकमात्र' दो सूर्य है। अन्य भाषाओके लेखक 'सपुटनिक' मात्र है। दादा स्वय ब्राह्मोसमाजी है। कोल्पोनाजी काली माईकी उपासिका हैं और विमोल दादाके 'शोगुर' चैतन्य महाप्रभुकी मधुराभक्तिके क़ायल है। दादाके छोटे भाई विपिनचन्द्र निरीश्वरवादी होनेके बाद छुटपनमें घरसे भागकर जवानीमें कॅम्युनिस्ट पार्टीके अनुगामी बन गये है।

चाय समाप्त होनेके बाद विमोल दादाने अजयको बुलाकर एक आनेके पान लाने और आना किताबमे लिखनेका आदेश दिया क्योकि 'वे आज उधार कल नकद' में विश्वास रखते थे और अपने उसूलके लिए उन्होने आज तक कोई भी चीज नकद पैसा देकर नही खरीदी थी। मास्टर नन्नेके यहाँ भी उनका हिसाब चलता था। पिताका श्राद्ध करवाते समय ब्राह्मणको भी उन्होने पोस्टडेटेड चैक दिया था।

विमोल दादाकी ऊँची बातें, चौडे हाव-भाव और गहरे दर्शनको देखकर मेरा दम घुटने लगा, गला सूखने लगा और नाक पसीजने लगी। रेडियोकी बात तो मै साफ भूल चुका था, क्योकि विमोल दादाके यहाँ

मोड़नेके लिए मैंने खाँसकर सकुचाते हुए पूछा, "बिमोल दादा यहीं रहते हैं ?" महिलाने गलेमें आँचल डालकर सकारात्मक स्मित किया और कुटीरके मिलनकक्ष (ड्राईंग रूम) की ओर उन्मुख होकर "शोनो" कहकर पुकारा। उनका पुकारना था कि बिमोल दादा बरामदेमें अवतीर्ण हुए और मुझे देखते ही "एसो एसो दादा, की खबोर"का जयनाद करते हुए नाचते-से काननमें उतर आये। बड़ी हार्दिकतासे मेरी पीठपर हाथ रखते हुए उन्होंने महिलाकी ओर उन्मुख होकर मेरा परिचय कराया – "कोल्पोना, आमार स्त्री" और अपना ताम्बूल-सिक्त मुँह फाड़कर चौबीसो दाँत निपोरते हुए झटके-से शालको पृष्ठगामी किया।

मिलन-कक्षमें सुभाष, सुहास, अजय, सुनीता, आरती, बीना, मीना, रोजनीगन्धा और भारतीसे परिचय हुआ। ये सब बिमोल दादा और कोल्पोनाजीके सन् '४८ से लेकर '५७ तकके संस्करण थे। सन् '५८ का मॉडल डिक्लेअर होनेमें अभी कसर थी। भारती उनकी सबसे छोटी दुहिता थी। मीनाका गीत, बीनाकी वीणा, आरतीके चित्र और भारतीका नृत्य देखनेके बाद अजयकी चुनी हुई जंगली लकड़ियोंका प्रदर्शन हुआ। उन लकड़ियोंमें कुत्ते, बिल्ली आदिकी आकृतियोंका आरोपण देखकर मुझे अलंकार मंजूषा याद आ गयी और 'परभाकर' परीक्षामें बैठनेवाली एक छात्राका स्मरण हो आया जो शास्त्रीजीके आदेशानुसार बरतन माँजते-माँजते प्रत्येक रगड़के साथ 'चार हो रेफ तो स्रग्वणी छन्द है' रटा करती थी। ललित एवं वाक्कलाकी प्रयोग-चर्चा समाप्त होते ही बिमोल दादा पूछ बैठे "की खाबे ?" मैं समझा खाना खानेके लिए कह रहे हैं, अतः कृतकृत्य होते हुए मैंने कहा, "खाना तो मैं रातको खाता हूँ और वह भी मूँगकी दालकी खिचड़ी। हाँ, चाय पी लूँगा।" "भालो, भालो चा खाबो, चा खाबो।" तब मैं समझा कि बंगलामें खाने-पीने, सूँघने, सबको खाना कहते हैं फिर चाहे रोटी-तमाखू, सिगरेट, चाय-पानी-कुछ भी हो।

कुछ देर बाद बंगाल पौटरीजके प्यालोमे चाय लिये कोल्पोनाजीने प्रवेश किया और बगाल केमिकलके 'जवा कुसुम हेअर आइल'की गन्धसे कमरा भर गया। बातचीतके दौरान दादाने बताया कि उनकी पत्नी गत दस वर्षोसे (यानी विवाहके एक वर्ष पूर्वसे) 'गीताजलि'मे साम्यवाद तलाश कर रही है। बिमोल दादा अपनेको टैगोर-खानदानसे सम्बन्धित बताया करते थे। वे उदयशंकरके शागिर्द है तथा इस चढती उम्र और उतरती जवानीके बावजूद मृदंग-नृत्यमे पटु है। चित्रकारीमे रोविन्द्रके अनुयायी है। उनके कुछ चित्र, जैसे छोटा घोडा, काणा कौवा, मछली तितली, पारिजात, मूसा बैल, सारस, कमरेकी दीवारपर लटके हुए है। चर्चाका विषय कलासे पलटकर साहित्यकी ओर बढते ही दादाने बताया कि उन्होने बग भाषामे कई गीत छाया, स्वप्न और निद्रापर लिखे है। उनका अखण्ड विश्वास है कि शरद्बाबू और बकिम साहित्याकाशके 'एकमात्र' दो सूर्य है। अन्य भाषाओके लेखक 'सपुटनिक' मात्र है। दादा स्वयं ब्राह्मोसमाजी है। कोल्पोनाजी काली माईकी उपासिका है और बिमोल दादाके 'शोशुर' चैतन्य महाप्रभुकी मधुराभक्तिके कायल है। दादाके छोटे भाई बिपिनचन्द्र निरीश्वरवादी होनेके बाद छुटपनमें घरसे भागकर जवानीमे कॅम्युनिस्ट पार्टीके अनुगामी बन गये है।

चाय समाप्त होनेके बाद बिमोल दादाने अजयको बुलाकर एक आनेके पान लाने और आना किताबमे लिखनेका आदेश दिया क्योकि 'वे आज उधार कल नकद' में विश्वास रखते थे और अपने उसूलके लिए उन्होने आज तक कोई भी चीज नकद पैसा देकर नही खरीदी थी। मास्टर नन्नेके यहाँ भी उनका हिसाब चलता था। पिताका श्राद्ध करवाते समय ब्राह्मणको भी उन्होने पोस्टडेटेड चैक दिया था।

बिमोल दादाकी ऊँची बातें, चौडे हाव-भाव और गहरे दर्शनको देखकर मेरा दम घुटने लगा, गला सूखने लगा और नाक पसीजने लगी। रेडियोकी बात तो मै साफ भूल चुका था, क्योकि बिमोल दादाके यहाँ

मैं इतना इम्प्रेस हुआ था कि अपने बारेमें डिप्रेस होना लाज़मी था। दादासे विदा लेते समय नये सालको याद आते ही मेरे हाथ मिलाने-पर हाथको झकझोरते हुए मुँह फैलाये उन्होंने कहा, "शेम टु यू"। मुझे बिजलीका झटका लगा, परायी आँखों और जड पैरोंसे मैंने घरका रास्ता नापा। घर पहुँचा तो सामने ही चंचला खेल रही थी, मुझे देखकर दौड़ती आयी और तुतलायी भाषामें मुझे चिढाने लगी, "अम्मा आज दद्दाकी हजामत कलेंगी"! विषयकी गम्भीर पूछताछ करनेपर पता लगा कि मेरी अनुपस्थितिमें चंचलाकी अम्माको गुस्सेका फिट पडा था और उसने कपडे धोनेके ऊबड-खाबड पत्थरपर मेरे घरके पुरातन उस्तरेपर धार धरी थी। चंचलाको डाँटकर मैं दबे पाँव उलटे पैर नन्नेकी दुकान-की ओर लपका और मौका सँभालनेके लिए अगले दिन पिताजीका श्राद्ध बताकर सिरपर उस्तरा फिरवाकर सिरको बायें हाथसे सहलाता घरमें घुसा तो श्रीमतीजी लोकल रेडियो खोले आँखें बन्द किये तन्मयतासे लाइट म्यूज़िक सुन रही थी –

जब तुम ही चले परदेस,
लगाकर ठेस,
ओ प्रीतम प्यारा, दुनिया मे कौन हमारा....

कमरेमें फैली हुई हींगकी गन्धके साथ मछलीकी सुगन्धकी तुलना करता हुआ उस समाधिस्थ मूर्तिकी ओर निर्निमेष देखने लगा – देखता रहा।



आप सोचते होंगे

पता नही आपने कभी सोचा है या नही, पर बात वास्तवमे सोचनेकी ही है। प्रेयसीकी प्रणय-लीलाके बारेमें आपने सोचा होगा। बीवीकी भन-भन भी आपके सोचनेका विषय रही होगी। बच्चोकी पलटनने भी आपको कभी-कभी चारपाईपर लेटे-लेटे सोचनेके लिए मजबूर किया होगा। मतलब यह कि और भी कई ऐसी चीजें होंगी जिनके बारेमें आपने सोचा होगा – चाहे मन मारे ही सोचा हो, जैसे दफ्तरमें अधिकारियोंकी घुडकी, राशनकी दूकानपर 'अहं ब्रह्म' बना हुआ दूकानदार। सडकपर केला खाकर छिलका छोड जानेवाले महाशय, रास्तेमें हाथ दिखानेपर भी न रुकनेवाली बस, दिल्लीकी आदमी उगलती हुई ट्राम और छीटकी अमेरिकी ढगकी बुश्शर्ट पहननेवाला छैला इत्यादि। इनसे भी बढकर यदि किसीको अपने मुन्नेकी माँकी ओर घूरते देखकर सोचनेसे नोचनेकी नौबत आकर दिमागमें मोच आ जाये तो कोई ताज्जुब नही। मतलब यह कि आपके सोचनेके विषयमें साइकिलके घूमते हुए पहिये और लालाकी दो मन तीन सेर चार छटाँक तोंदके वैलेंसिगसे लेकर शूर्पनखाके लिपस्टिक मण्डित खूनी होंठो और 'प्यारी बहनो, न तो मै कोई नर्स हूँ', वाले विज्ञापन तककी सभी छोटी-बडी वस्तुएँ डूबती-तैरती रहती होगी।

इतना सोचनेपर भी आपने कुछ नही सोचा, क्योकि जो कुछ भी आपने सोचा वह सोचा न सोचा बराबर है। इसलिए कि आपने शायद यह कभी नही सोचा कि अपने बारेमें भी कभी कुछ सोचा जाये, कभी

सोचा भी तो अब सोच कर दिया और अब सोच करनेसे फिर कभी सोचनेकी नौबत ही न आयी। इसी सिलसिलेमें एक कहानी याद आ गयी। एक बार गुरु द्रोणाचार्यने पाण्डव-कौरवादि अपने शिष्योकी धनुर्विद्याकी जाँच करनेके लिए सामने वृक्षपर एक मिट्टीका पक्षी रख दिया और अपने सभी शिष्योको प्रत्यंचा चढाकर निशाना साधनेका आदेश देकर पूछा कि तुम्हे सामने कौन-कौन-सी वस्तुएँ दिखाई दे रही है। किसीने पेड कहा, तो किसीने पेड, पत्ते, आकाश आदि अन्य सभी चीजोका व्यौरा सुना दिया। लेकिन जब अर्जुनसे पूछा गया तो उसने बताया कि पक्षी ही दिखाई दे रहा है। आप सोचकर देखें तो आपको पता चल जायेगा कि अर्जुनका वास्तविक अभिप्राय यह था – "मै देख रहा हूँ कि मुझे क्या देखते रहना है।" गर्ज यह कि जो कुछ हम सोचते है, उसे सोचना कहा जाये तो वास्तविकतामे वह सोचनेकी परिधिमें नही आता, क्योकि घोड़ेकी लीदसे लेकर अणुबमकी भयानकता और कृत्रिम जल-वर्षणकी अद्‌भुतता सोचते हुए भी हम अपने बारेमे नही सोचते—

आँखिन सबको देखिया, आँखि न देखी जाये।

मेरा तात्पर्य यह नही कि हम अपने बारेमे सोचते ही नही। रसगुल्ले देखकर हम जरूर सोचते है और काफी तेजीसे। बस अथवा रेलके तीसरे दरजेके डिब्बेमे थोडी जगह दीख जाये और हमारा सोचना लपकनेमे परिणत हो जाये तो भी सोचना तो रहेगा ही। किसी अप्रिय व्यक्तिकी तरक्की अथवा सम्पदाको देखकर अपनी फटी हालतपर क्रोध करके ईश्वरको (यदि आप भाग्यवादी है तो) या फिर शासन-व्यवस्थाको दोप देकर अपनी असफलताओको ढँकते रहनेका भगीरथ प्रयत्न भी तो सोचना ही है और वह भी शुद्ध अथवा विना मेल सोचना। यह सोचना बाजारमे विकनेवाले असली घीकी तरह नही जिसको अशुद्ध प्रमाणित करनेके लिए पचास रुपयेका पुरस्कार रखा जाता है, पर जो कभी किसीको मिलता नही सुना गया, क्योकि घीके शुद्ध वनस्पति घी होनेके कारण

अशुद्धताका प्रश्न ही नही उठता।

मतलब यह कि जहाँ हमारे स्वार्थका प्रश्न तनकर कुतुबमीनारकी तरह खडा हो जाता है वहाँ सोचने और नोचनेकी शक्ति अपनी चरम सीमापर पहुँच जाती है। मेरा विषय इस प्रकारके सोचनेसे सम्बन्धित नही। पत्नी-द्वारा सुन्दर कहलानेपर भले ही आप अपने बारेमें कुच सोचें और सोचते-सोचते अपनी तुलना अशोककुमारके रूप और जयराजके लहजेसे कर बैठें, तो भी मुझे उससे कोई मतलब नही। बुद्धू कहे जाने-पर बाहरसे उसका विरोध करते हुए भी यदि आप अपने भीतर एक बुद्धूकी हरकतोका आभास पाकर दार्शनिक मुद्रा बनायें और यह सोचने-की चेष्टा करें कि वास्तवमे आप बुद्ध ू है या नही, तब भी वह मेरे विपयसे बाहर है।

वास्तविकता यह है कि हम-आप सभी सोचते है, सोचते-सोचते गाय तथा भैसके जुगाली करते हुए एक ओर देखते रहनेमें भी हम 'सोचना' ही खोज निकालते है। इसी तरह गधेको भी एक विशेष दृष्टिकोणसे देखकर उसके सौन्दर्यकी सराहना करनेके बारेमे सोचते रहनेसे अ।प एक दार्शनिक कहला सकते है। पर मेरा संकेत इस सोचनेकी ओर नही है। ईश्वरकी कृपासे आप अच्छे-खासे दो पैरोके मनुष्य है—डार्विनके अनुसार बन्दरके 'नूतनतम सस्करण' नही—और मनुष्य होनेके नाते आपके पास एक सिर भी है। और चूँकि आपके पास सिर है, हो सकता है उस सिरमें निरे छोले ही न भरे हो। इस दशामें सोचना लाजमी है, चाहे फिर आपका सोचना किसीकी बड़ी नाकसे टक्कर खा-खाकर पीछे उछलता रहे, चाहे 'अधिक उपजाओ' आन्दोलनके अन्तर्गत किसीकी वढी हुई मूँछोंपर चिरकी हुई मलाईपर अड जाये। जवतक आप बे-सिर-पैर नही है और जवतक अपने-जैसे सिर-पैरवालोमें रहनेका आपको जन्मसिद्ध अधिकार है, तवतक यह सव चलता ही रहेगा, लेकिन इतना सोचने-पर भी कुछ सोचना बाकी रह जाता है, जैसे यह लेख पढकर मेरी अवल-

पर तरस खाकर आपका सोचना लाजमी है। इसपर यदि आपको यह सोच हो जाये कि आप भी यदि लिखनेके भूतको डेरीके पनियल दूधकी खीर खिलाकर अपने वशमें कर लेते तो मुझसे कही अच्छा लिखने लगते, तो भी आश्चर्यके लिए गुंजाइश बाकी नही रहती।

हाँ, तो मै कह रहा था कि इतना सब सोच लेनेपर भी कुछ सोचना बाकी रह जाता है। आप पूछेंगे क्या? और पढते-पढते प्याज़की खुशबूसे रसोईकी ओर ध्यान आकृष्ट होनेके कारण पूछना भूल भी जायें तो भी मैं कहूँगा कि सोचते समय शीशा उठाकर उसमें जरा अपनी सूरत देखनेका कष्ट तो कीजिए। न हो तो बीबी अथवा बच्चोमे-से किसीको घुडककर ही शीशा मँगवा लीजिए और उस शीशेमें अपनी गोभीके पकौडे-जैसी नाक, पिचके हुए खरबूजो-जैसे गाल, हाथीकी आँखो-जैसी छोटी और बन्दर-जैसी मटकती हुई आँखें ध्यानसे देखिए। यदि आप एक सुयोग्य नागरिक है और अधिक उपज्ञाओका ट्रेडमार्क आपके मुखपर विराजमान हो तो मूँछोंके एक-एक बालको गिन जाइए और देखिए कि उनके लम्बे-लम्बे बाल 'मैं तो नैहर जैहो'वाली अदासे किस कदर बल खा रहे है। इतना कर लेनेके बाद ज़रा नाक सिकोडकर, मुँह फैलाकर, आँखें विस्फारित करके, माथेपर बल डालकर, बायें हाथसे बायें गालपर एक-आध मुँहासा नोचते हुए अपनेको आइनेमें निरखिए और अपने नामका समन्वय अपने उस अनुपम रूपसे कीजिए जो आप आइनेमे देख रहे है। ऐसा करनेसे आपको समझनेमें देर न लगेगी कि उन दोनोमें उतना ही अन्तर है जितना आपमें और आपकी पत्नीमें। इतना ही नही ज़रा उस समयके बारेमे सोचिए, जब आप अकेले कमरेमें बैठे हों और जमुहाई आती हो। उस समय बिना सोचे मुँह चौडा करके नथने फुलाना कितना मनमोहक लगता होगा। यदि उस समय आप अपनी शक्ल देख सकें तो अहमदके कार्टून भी आपको फीके लगने लगेंगे। या फिर चुपचाप बैठे मूँछके बाल पकड़कर घुमाते रहना, नाकको अँगूठे और चौथी उँगलीका चिमटा बनाकर बार-बार

खोचना, या फिर मुँह बना-बनाकर निचले होठको दाँतोसे मोचना और यह भी नही तो कमसे कम कनिष्ठिकासे नाककी खुदाई करके प्राप्य वस्तुओंका परीक्षण करना – इन सबको आप सोचनेको वस्तु भले ही न समझें, मैं तो समझता ही हूँ।

आप सोचेंगे कहाँकी सोच बैठा। लेकिन बात सोचनेकी ही है। चाहे सोचकर आप उसे अनसोचा कर दें, मुझे सोच न होगा। यह सोचकर भी बिना सोचे-समझे मैं जो यह लिखने बैठा हूँ वह एक सोचते हुए व्यक्तिको देखकर ही। आप मेरे पास होते तो मैं आपको खिडकीकी ओरसे देखने-का इशारा करता और आप देखते एक व्यक्ति सोचता हुआ और देखकर आप भी सोचते कि इस बारेमें अब क्या सोचा जाये। यहाँ जो कुछ भी मैंने लिखा है या आपके शब्दोंमें सोचा है वह उस व्यक्तिको देखकर ही। लेकिन अब वह उठकर चला गया है, इसलिए आगे क्या लिखूँ यह सोचने लगा तो सोचता ही रह गया। अब बताइए, आपने क्या सोचा ?



विटामिन एफ़

आपने अबतक केवल पाँच विटामिन्सके नाम सुने है। आप यह भी जानते है कि इनका सीधा सम्बन्ध जीवनी-शक्तिसे है। यह शक्ति सब्जियो और फलोमे होती है और इसीलिए सन्तुलित आहारकी आजके कागजी मनुष्यको बडी आवश्यकता रहती है। परन्तु सब्जियो और विटामिन्ससे अधिक महँगे होनेके कारण आज विटामिनकी गोलियाँ ही आहार बन गयी है, जरा-सी कोई शिकायत हुई और डॉक्टर महाशयने फौरन विटामिनकी गोलियो-को आपके हलकके नीचे उतारना शुरू कर दिया। यकीन न हो तो किसी राधा, अनुराधा या शकुन्तलासे प्रेम करके देख लीजिए। कुछ ही समयमे आप एक अच्छे-खासे कवि बन जायेंगे और तार सप्तकके स्वरोमें रेंकनेवाले मिलके भोपूमे भी आप प्रियाकी मधुर-मधुर पुकार सुनने लगेंगे – सडकके टिमटिमाते लैम्पको प्रेयसीकी आँख समझकर आप उससे अपनी आँखें मिलाये निर्निमेष देखते रहेंगे। ऐसी दशामे यदि आपका कोई सहृदय मित्र आपकी हालतपर तरस खाकर जबरदस्ती आपको डॉक्टरके पास ले जाये तो डॉक्टर आपकी कवि-कल्पनाओको दिमागकी कमजोरी समझ-कर फौरन एक-न-एक विटामिन रिकमेण्ड कर देगा। उसके मतानुसार मानव-जीवनकी सभी विषमताएँ विटामिन्सकी कमीसे पैदा होती है और इसीलिए किसी भी मानसिक या शारीरिक विकारके लिए इन पाँचो विटामिनोंमें-से एक या अधिकका सेवन आवश्यक समझा जाता है। इस प्रकार यह पाँचो विटामिन्स शरीरके पोषण और रक्षणमे सहायक होते है,

परन्तु इनसे सर्वथा भिन्न एक और विटामिन भी है जिसका सोधा सम्बन्ध शरीर-पोपण और रक्षणसे न होकर भक्षणसे है, यह है विटामिन एफ्। क्रममें इसका स्थान छठा है। पाँच विटामिन-रूपी पाण्डवोंमें यह द्रौपदीके समान है। क्योकि एक तो पाँचों विटामिन्स इसके अधीन होते है और द्रौपदीके चीरकी भाँति परिणाममे यह अपरम्पार होता है।

इस विटामिनका पता मुझे उस समय लगा जब मै एक अच्छा-सा कैरियर पानेकी हरचन्द कोशिश करनेके बाद भी नाकामयाव रहा और अन्तमे वेकारोकी हालतमें 'आजके समाजमे सफलताका रहस्य' विषयपर रिसर्च करनेके लिए डॉ॰ तिकडम एम॰ ए॰ के पास पहुँचा। डॉक्टर साहव सफलताके प्रतीक थे। एम॰ ए॰ की परीक्षा उनके लिए उनके एक मित्रने पास की थी, डॉक्टरेटकी डिग्रीके लिए उन्होने स्वय डॉक्टर अतीन्द्रियकी सात साल तक रद्दी छाँटी थी, वच्चोको स्कूल पहुँचाया था। सुवह-शाम सब्जी पहुँचायी थी और इस दौरानमें अनेक पुस्तकोको कतरनो-को एकत्रित करके अतीन्द्रियजीकी प्रिय शिष्या कुमारी रम्भाके सहयोग और डॉक्टर साहवकी कृपासे तिकडम महाशय डॉक्टर वने और आज एक मिनिस्टर साहवकी नजरोमें चढकर एक वहुत ऊँचे पदपर जम गये है। उनकी एक कन्या मिनिस्टर साहवकी पर्सनल असिस्टेण्ट है, दूसरी फ़िल्म संसारमे चमक रही है और तीसरी एक विख्यात नर्तकी है।

कई दिनो तक अनुनय करनेके वाद डॉक्टर तिकडमने मुझे वताया कि डॉक्टरेट-वाक्टरेट करनेमें कुछ नही धरा है। ज़िन्दगीमें कुछ हासिल करना है तो आदमी वनो। डॉक्टरेट तो किताबोंकी कतरनें इकट्ठा करनेसे भी मिल जाती है। दुनियाको चलाना सीखो। दुनिया चलती है, चलाने-वाला चाहिए। मॉरॅल वैल्यूज-जैसी कल्पनाएँ मनकी कमज़ोरी-मात्र है। इन सबके चक्करमें पडना हो तो कैरियरकी आशा छोड़ो। तीसरे दरजेका टिकिट कटवाओ, हरिद्वार पहुँचो और सिर मुँडवाकर राम-नाम जपा करो। दुनियाको चलानेका रहस्य पूछनेपर उन्होने वताया कि यह सब

खूबियाँ विटामिन एफमें है, यह विटामिन कोई ओषधि न होकर इसका फ़ॉर्मूला एकदम न्यारा है। यह जिन व्यावहारिक तत्त्वोंसे बना है उसमे सभी तत्त्व एफ अक्षरसे शुरू होते है, यही इसकी सबसे बडी विशेषता है। इसमे जो तत्त्व समाविष्ट है वे है फीड यानी जिससे कुछ काम हो उसे दबाकर खिलाओ फिर चाहे वह दावतें हो या घूस; फ्रेण्डशिप यानी उसे अपनी दोस्तीका विश्वास करा दो; फूल यानी स्वय मूर्ख बन जाओ और समय आनेपर उसे मूर्ख बनाओ; फाउल यानी दगा देनेका मौका आये तो ऐसे सुअवसरको कदापि न छोड़ो, फैमिनिन, यानी समय पडने-पर अधिकारियोकी वासनाओको भी तृप्त करते रहो क्योकि इसी उपायका प्रचलन प्राचीन कालमें विप-कन्याके विधानमे भी था; फेस यानी अपने असली चेहरेको छिपाकर समय-समयपर अनेक मुखौटे धारण करनेकी क्षमता रखो; फर्स्ट यानी किसी भी विशेप समारोहके अवसरपर वी० आई० पी० जे०के आगे-आगे रहो; फीयर यानी ऐसा दिखाते रहो कि तुम भगवान्‌-से डरते हो; फेण्ट यानी कितने भी अपमानित क्यो न हो उसका जरा भी असर अपनेपर न होने दो। डॉ० तिकडमने बताया कि विटामिन एफ्, के इन महत्त्वपूर्ण तत्त्वोंमें-से जिसने केवल एक तत्त्वको भी अपनाया वही आज किसी-न-किसी बडे पदपर चिपका हुआ है। ऐसा न होता तो पंजाबीभापी फौजासिंह विदेशमें भारतीय भापाओके अध्यापक बन-कर न जाते। अहमक मियाँ दूतावासमे कल्चरल एटैची न बनते। गुटरगूँ करनेवाली कबूतरी देवी संगीत विभागकी अध्यक्षा न बनती और परचूनी-वाले छिछोरे लाला एक करोडपति कॉण्ट्रैक्टर न बन बैठते। डॉ० तिकडम-ने यह भी बताया कि यह विटामिन कैमिस्टकी दूकानपर नही मिलता बल्कि इसे प्राप्त करनेके लिए गुरु बनाना पड़ता है और तन-मन-धनसे उसकी सेवा करनी पड़ती है।

गुरुवर तिकडमसे सफलताके रहस्यका पता लगते ही मैने रिसर्चका विचार छोड़ दिया है। गत पाँच वर्षोसे उन्हीकी सेवामे रत हूँ। इस सेवा-

का ही परिणाम है कि आज मैं एक महकमेका अध्यक्ष हूँ और समाजमें एक आदरणीय व्यक्ति समझा जाता हूँ। अपनी पत्नी-द्वारा छोड दिये जानेके बाद भी मैं सुखी हूँ, यह सब डॉ० तिकड़म और विटामिन एफ्का ही चमत्कार है। आपको यकीन न हो तो विटामिन एफ्का सेवन कर देखिए।



पराक्रमी पापाजी

कोई भी नौकरी पानेके लिए कोई-न-कोई डिग्रीका या डिप्लोमाका होना जरूरी होता है। अपनी सुपुत्रीके विवाहकी बात सोचनेके पहले लडकी-का पिता भी अपने भावी जामाताकी योग्यताकी वात सोचना नहीं भूलता। समाजमे भी आपकी अकलका अनुमान आपकी क्वालिफिकेशन्स-से ही लगाया जाता है। अक्लके आप कितने ही मोटे क्यों न हो पर यदि आपके पास डिग्री है तो आपकी डिग्री दुनिया-भरपर डिग्री करनेमें समर्थ होती है। यदि ऐसा न होता तो 'जाहिल' या 'मूर्ख' शब्दका हमारी बातचीतमें इतना प्रयोग न होता जितना आये दिन हो रहा है, और अक्लके अधिकारी यदि केवल पढे-लिखे लोग ही होते तो सामान्य ज्ञान इतना असामान्य न होता जितना हम आज देखते है। और न ही हमारे पापाजी अपने मोहल्लेमें वह स्थान पाते जो वे आज ऐंठे बैठे है।

मै नही समझता कि कठोर पापाजीने इस नाजुक प्रश्नपर सोचकर मैदान मारा हो क्योकि सोचनेके वे स्वप्नमें भी कायल नही है। वे जो कुछ करते है बिना सोचे विशुद्ध भावावेशमें। यहाँतक कि करनेके बाद भी वे नही सोचते कि उन्होंने क्या कर डाला है। ऐसा न होता तो वे अपने बेटेके सिरपर आईना फेंककर मारनेके बाद बेटेकी चोटकी बात नही तो आईनेके टूटनेसे होनेवाले नुकसानकी बात अवश्य सोचते।

पर यह सच है कि वे नही सोचते और न सोचते हुए भी वे मोहल्ले-के नेता बने बैठे है और इसी बातका मुझे हमेशा सोच रहा है। मै नहीं

मानता कि दुनियाकी कोई भी बात विना कारणके हो सकती है। और इसलिए पापाजीके मोहल्लेका नेता बन बैठनेके पीछे भी अवश्य कोई-न-कोई कारण है। बहुत खोजनेपर भी मै पापाजीकी सफलताका कारण नही खोज पाया हूँ। योग्यताकी दृष्टिमे देखा जाये तो पापाजी केवल मैट्रिक है। उन्हे सज्जन पुरुष भी नही कहा जा सकता क्योकि मोहल्लेके कई लोगोंसे छोटे-छोटे बच्चोके परस्पर झगडोंको लेकर वे मारपीट भी कर चुके है। सच्चरित्र भी उन्हे नही कहा जा सकता क्योंकि दर्जन-भर पिल्लोके पिता होनेके बावजूद वे मोहल्लेकी प्रत्येक ललनाको केवल कनखियोसे ही नही देखते बल्कि मौका मिलते ही उससे मज़ाक भी कर लिया करते है और ललना बेचारी पानी-पानी हो जाती है। वे दानवीर भी नही है क्योकि उनकी और उनके परिवारकी वीरश्रीका उपयोग दूसरोकी चीज़ें खसोटनेमे ही होता है और इसीलिए मोहल्लेमें किसीकी बागमें भी फूल, सब्जियाँ या फल नही टिक पाते।

लेकिन प्यार और घटना अचानक हो जाया करती है। अतः एक दिन अचानक एक ऐसी घटना घटी जिससे पापाजीकी सफलताकी बात एकदम मेरी समझमें आ गयी।

बरसातके दिन थे। धुआँधार वर्षा हो रही थी। बिजली कडक रही थी। कमलेशजी बना रही थी और पापाजी गरमागरम पकौड़ोपर टूट पडे थे। तभी पापाजीके निजी संवाददाताओमें-से एकने यानी दो नम्बरके उनके काकाने आकर सवाद दिया कि कल रातसे फकीरचन्दकी बीबी घरसे लापता है। पापाजीको ऐसा धक्का लगा मानो कमलेशजी ही भाग गयी हों। अँगीठीपर तेल जलता रहा और पापा-दम्पति औसान खोये फकीरचन्दके यहाँ जानेकी तैयारियोमें लग गये। पैण्ट चढाते-चढाते उन्होने समस्याकी अनेक सम्भावनाओंपर विचार कर डाला। नुक्कडके साइकिलवालेसे एक लडका पम्प माँग लाया और दूसरा वर्षामें भीगता हुआ मि० त्रिलानीके पास छाता माँगने जा पहुँचा। पापाजीको

अपने भीगनेकी चिन्ता नही थी पर कमलेशजीकी साडी नायलॉनकी थी और उनका अनुमान था कि एक छाता होनेसे कमलेशजीकी साड़ी भीगनेसे बच जायेगी, क्योकि कैरियरपर बैठते समय घुटनोसे ऊपर तक साडी समेटकर बैठनेकी अपनी योजना उन्होने पहले ही कमलेशजीको सुना दी थी। साइकिलमे हवा भर दी गयी और छाता भी आ गया। और पापा-दम्पति साइकिलपर सवार हो गये। सब काका-काकियोने मिलकर कमलेशजीकी साड़ीका मुआईना किया और उसे समेटकर कमलेशजीकी जाँघोमें दबानेमे मदद की।

जैसे-तैसे पापाजी घरसे तो चल पडे पर हवा और पानीकी ऐसी बुरी थपेड़ें पड रही थी कि साइकिल चलाना कठिन हो रहा था पर पापाजी हिम्मत हारनेवाले व्यक्ति नही थे। अतः एडी-चोटीका ज़ोर लगाये वे कमलेशजीको लादे साइकिल ठेलते जा रहे थे और अपने पराक्रमपर हँसते जा रहे थे। यदि कोई इक्का-दुक्का राह चलनेवाला मनचला व्यक्ति कमलेशजीके उस स्वरूपको देखनेका लोभ न संवरण कर पाता तो पापाजी मुडकर देर तक उसे घूरने लगते। इतनेमे हवाका एक जोरका थपेडा लगा और छाता कमलेशजीके हाथसे छूटकर दूर जा गिरा। पापाजी साइकिलसे जो एकदम कूदकर उसे पकडने भागे तो यह भूल ही गये कि पीछे साइकिलपर कमलेशजी विराजमान है। छाता आगे-आगे टेढा-टेढा लुढकता जा रहा था और पापाजी सीधे उसके पीछे दौडे जा रहे थे। अपनेको सँभालनेमें कमलेशजीको कोई पाँच मिनिट लगे होगे। शरीरसे सटी हुई भीगी साड़ीको अलग करके वे अपने बाल निचोड़ ही रही थी कि हाँफते हुए पापाजी लौट आये। शेष यात्रा पैदल चलकर ही तय हुई।

फकीरचन्दसे भेंट हुई तो पापाजी गले पडकर फकीरचन्दसे मिले मानो उनकी बीवी भागी नही मर गयी हो। पर अपना शोक और हर्ष प्रकट करनेका पापाजीके पास एक यही तरीका था। साथ ही कमलेशजीके

साडी बदल लेनेकी बात निकलते ही वे मजाकमें यह भी कहना न भूले कि अच्छा हुआ भाभी भाग गयी नही तो फ़क़ीरचन्द तुम्हें उधार साड़ी देनेकी भी बात नही कहते।

फ़कीरचन्दसे सारी बात जान लेनेके बाद उन्होने जो प्रश्नोकी झडी लगायी तो तुके और बेतुके सारे प्रश्न पूछ डाले मानो वे डॉक्टर और वकील दोनो एक साथ हो।

अन्तमें कमलेशजीसे परामर्श करके उन्होंने फकीरचन्दसे तत्काल पुलिसमें रिपोर्ट देनेके लिए कहा और समाचार-पत्रोको सूचना देने और वकीलसे सलाह करनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। फकीरचन्दके बार-बार कहनेपर भी कि कुछ दिन और देख लिया जाये हो सकता है कि वह किसी रिश्तेदारके यहाँ चली गयी हो, पापाजीने उनकी बात नही मानी। पापाजीके अकडते ही कि वे स्वयं इस बातका विज्ञापन करेंगे, फ़कीरचन्दको उनकी बात मान लेनी पडी। उस तेज वर्षामें फकीरचन्द-को जबरदस्ती पुलिस स्टेशन विदा करके पापाजी नये उत्साहसे समाचार-पत्रोको सूचना देने चल पड़े। जब रातको घर लौटे तो हिन्दू कोड बिल लिये हुए। रात-भर उन्होने उसका अध्ययन किया और सुबह मैदान मारे-से कमलेशजीके साथ वे फकीरचन्दके यहाँ जा पहुँचे। क्योकि पापा-जीके विचारमे कानूनकी वह पुस्तक पढनेके बाद वे केसको अच्छी तरहसे समझ गये है।

फकीरचन्दके यहाँ कोहराम मचा हुआ था। बाहर कई अडोसी-पडोसी इकट्ठे हो गये थे और भीतर फकीरचन्दकी बीबी पतिसे उलझी पडी थी। पापाजीने यह काण्ड देखा तो सहम गये पर वे उन लोगोमें-से नही थे जो कभी भी हार मानते हैं। अतः कानूनका वह मोटा वाल्यूम चुपचाप कमलेशजीको थमाकर और सामने लॉनमें साइकिल फेंककर हाँफते हुए-से वे भीडमे घुस गये। लोगोसे कानाफूसी करनेके बाद उन्हें पता लगा कि कल रक्षाबन्धन होनेके कारण फ़कीरचन्दको बीबी परसो रात

अपने भाईके यहाँ चली गयी थी और जाते समय फकीरचन्दसे कह भी गयी थी, पर फकीरचन्द नशेमे चूर होनेके कारण वे इस वातको भूल गये और जल्दबाजीमे वीवी भागनेकी खबर अखवारोमे छपवा दी। सुवह जव उनके भाईने अखबार पढा तो फकीरचन्दकी बीवी अपने सारे रिश्तेदारोंको इकट्ठा करके आ धमकी और अव सब मिलकर फकीरचन्द-पर टूट पड़े है। फ़क़ीरचन्दकी दशाकी कल्पना करके पापाजीकी आँखें भर आयी। वे तत्काल लोगोको ठेलते हुए कमलेशजीके पास जा पहुँचे और उनसे परामर्श करके उलटे पाँव फकीरचन्दके घरमे घुस गये। फ़क़ीर-चन्दकी बीवी फकीरचन्दको दबोचे दोनों हाथोसे उसके बाल नोंच रही थी और मुँहसे गालियोंके साथ-साथ नशेखोरीपर लानत दे रही थी। उतावले पापाजीसे यह सब नही देखा गया। उन्होने वुज़ुर्गियतके अन्दाजसे फकीरचन्दकी वीवीकी दोनों बगलोमें हाथ डालकर वडी मुश्किलसे उसे फकीरचन्दसे अलग किया और वीच-वचावके लिए आवाज भारी किये भाषण देने लगे। भाषणके दौरानमे उन्होने वताया कि मियाँ-वीवीमें ऐसी वातें हो ही जाया करती है उसका वुरा नही मानना चाहिए। फ़क़ीरचन्दको समझाते समय वे यह भी वताना नही भूले कि गुस्सेका ऐसा ही एक फिट एक वार कमलेशजीको भी पड गया था और पापाजीकी ख़वर उन्होने जूतियोसे ली थी पर पापाजीने उसका ज़रा भी वुरा नहीं माना था। भीतर थोडी शान्ति होते ही पापाजीने वाहर आकर भीडको ललकारा और लोग मुँह लटकाये लौटने लगे।

अब आप ही वताइए कि ऐसी घनी और देशी घीसे चुपडी हुई योग्यता क्या डिग्रियोमे धरी है? वह तो एकदम स्वयम्भू होती है। फिर भला पापाजीके स्वयंसिद्ध नेता होनेमे किसीको क्या आपत्ति हो सकती है।



स्पेशलाइज़ेशन

संसार परिवर्तनशील है – इस सत्यका उद्घाटन कई सत्पुरुषोंने समय-समयपर किया है। और मनुष्य संसारका ही एक अग होनेके कारण वह भी निरन्तर बदलता रहता है परन्तु बदलते हुए भी वह समझता है कि वह नही बदलता और मजा यह कि यह समझते हुए भी वह बदलता रहता है और इस बदलनेमे उसकी समझ भी बदलती रहती है। ऐसा न होता तो उर्दू शाइरीमें 'बेवफाई' सुननेमें न आती और इस बेवफाईकी अनुपस्थितिमें उर्दू शाइरी एकदम फीकी पड ,जाती। परिवर्तनरूपी इस सत्यका उद्घाटन मेरे सम्मुख उस दिन हुआ जिस दिन विदेशसे लौटे देशी फौजासिहकी विदेशी बातें सुन-सुनकर मुझे जुकाम हो गया और नाकसे चुपचाप उमडकर कविता ही नही बहने लगी बल्कि काफी शोरगुलके साथ निरन्तर तीन दिन तक बहती रही और अन्तमें बायें नथुनेमे ऐसा दर्दे-दिल शुरू हुआ कि पता ही नही लगता था कि दर्द कहाँ है और नाकके हिस्सेपर ही क्यो कर एक बदसूरत-सी कालिमा छा गयी है।

क्षमा कीजिए। नाकके इस सरस वर्णनको पढकर आप अपना साहित्यिक परिचय देते हुए इस रसका स्थायी भाव खोज निकालनेमे जल्दी मत कीजिए क्योंकि मै यहाँ स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मै प्राचीन और अर्वाचीन रस-शास्त्रियोंकी स्थापनाको एकदम निराधार समझता हूँ। इन सब मनचलोंने श्रृंगारको रसराज माना है पर श्रृंगार रसके साधन और रसास्वादनके तुरन्त बाद होनेवाली निष्पत्तिकी ओर इन आचार्योंने

देखकर भी अनदेखा कर दिया है। परन्तु मै ऐसा नही करूँगा क्योंकि जो जैसा है उसका वैसा हो वर्णन करना मै लेखकका कर्म समझता हूँ। मेरी इस साहित्यिक ईमानदारोके कारण आप मुझे पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीकी शिष्य-परम्परामें अग्रगण्य स्थान दे दें तो मै विना दायें-बायें देखे उसे झटसे स्वीकार कर लूँगा।

हाँ तो नाकका दर्द तो मै चुपचाप सहता रहा पर उसपर छायी हुई कालिमाने मेरा जीना दूभर कर दिया। जिन मित्रोने आज तक मेरी नाक-का सर्वेक्षण करनेकी आवश्यकता अनुभव नही की थी कि वह छोटी है, बडी है, पैनी है या गुट्ठल है, है भी या नही है, वे सब मुझे देखते ही पहला प्रश्न मेरी नाकके वारेमे करने लगे। अब आप ही बतलाइए कोई नाकके बारेमे भी इस तरह पूछा करता है! पर वे न पूछें तो दोस्त कैसे! और मै विस्तारसे अपने नाककी बात न बताऊँ तो कहेंगे 'बड़ी नाक' है।

आखिर मैंने तय कर डाला कि नाककी इस कालिमाका कोई इलाज शीघ्र ही करना चाहिए। भगीरथ प्रयत्नके बाद मुझे पता लगा कि दिल्ली-में एक ख़ास नाकवाले डॉक्टर है जो केवल नाक ही देखते है। मैंने तत्काल अपाइण्टमेण्ट ले लिया और दूसरे दिन नाक दिखानेके लिए जा पहुँचा। नाकवाले डॉक्टरने मेरी नाकका परीक्षण करते हुए मुझसे पूछा कि मुझे क्या शिकायत है। मैंने सारा हाल बताते हुए जब दर्दका स्थान बतानेके लिए नाकको स्पर्श किया तो उन्होने बताया कि वे नाकवाले डॉक्टर अवश्य है और नाक देखते भी है पर जिस चीज़के वे विशेषज्ञ है वह है नाकका सीधा नथुना। बीमारीका एक लम्बा-चौडा क्लिष्ट नाम लेते हुए उन्होने बताया कि मुझे शायद अमुक बीमारी है जिसका इलाज बायें नथुनेवाले डॉक्टर रामानुकण्डाभूर्तलिगम पिल्लै कर सकते है। कन्सल्टेशन फ़ी चुकाकर मै डॉक्टर भूर्तलिगम पिल्लैके पास जा पहुँचा। डॉ० पिल्लै, पिल्ले नही थे बल्कि ऊँचे पूरे जरठ भूर्तलिगम थे। मेरी नाकपर क्रूरतासे

एक लोहेकी छोटी-सी घडी पटक-पटककर उन्होंने दर्दका स्थान निश्चित करते हुए भूतवाणीमे रेंककर कहा कि वे केवल नाककी मासपेशियोंके विशेषज्ञ है और मेरी नाकका दर्द नाक-पेशियोका दर्द न होनेके कारण वे दर्दे-नाकका इलाज नही कर सकते। हाँ दर्दका इलाज हो जाये तो वे नाककी कालिमाका इलाज कर सकेंगे पर उसके पहले मुझे नेज़ल कनार्स विशेषज्ञ, वोन विशेषज्ञ, और नर्व विशेषज्ञसे परामर्श करना होगा। क्योकि उनका अनुमान है कि दर्द या तो नाककी हड्डीसे शुरू हुआ है या किसी कमज़ोर नर्वसे या फिर नाककी नलीमें किसी प्रकारका अवरोध पैदा हो गया है। उन्होने यह भी बतलाया कि इस दर्दका इलाज शीघ्र ही नही हुआ तो वह आँख और दिमागसे होकर दिल तक पहुँच सकता है। शेल्फसे एक मोटी-सी किताब निकालकर देखते हुए उन्होने यह भी बताया कि एक दूसरी सम्भावना हेमोरेज होनेकी भी है यानो नसोके फट जानेकी। नाककी इस छानबीनसे मैं इतना आतंकित हुआ कि बिना एपाइण्टमेण्टके ही नाककी नहरवाले विशेषज्ञके पास जा पहुँचा। वे बँगले-के लॉनपर बैठे अखबार पढ रहे थे। पर समय होते हुए भी पहलेसे समय निश्चित न होनेके कारण उन्होने मेरे नाककी ओर ताकनेसे साफ इनकार कर दिया और दूसरे दिन सुबह ठीक बारह बजकर तीन मिनिटपर आनेके लिए कहा। मैं अपनी-सी नाक लिये वापस लौट आया। दूसरे दिन बसमे हचकोले खाता, नाकको भीडसे बचाता, जब मैं डॉक्टर साहब-के पास पहुँचा तो वे छूटते ही पूछ बैठे – "नाकका एक्स-रे लिया है? न लिया हो तो फ्रण्ट और साइडसे नाकका एक्स-रे निकलवाकर ले आइए, उसके बिना कुछ बताना मुश्किल है।" दफ्तरसे मैंने बड़ी मुश्किलसे दो घण्टेकी छुट्टी ली थी। पिछले तीन दिनोसे यही कार्यक्रम चल रहा था। अबतक मुझे दफ्तरकी ही चिन्ता थी पर अब नाककी एक नयी चिन्ता पैदा हो गयी और दफ़्तरमें होनेवाले परिणामोको मैं भूल-सा गया। आफिसको फोन किया और फटफटिया पकड़कर नाक उछालता एक्स-रे-

वालेके पास पहुँचा और क्यूमें खड़ा हो गया। शामको छह बजेके लगभग मेरा नम्बर आया और किसी फिल्मी एक्ट्रेसकी भाँति मेरी नाकके स्नेप ले लिये गये। अब नाकवाले डॉक्टरसे मिलनेका समय न रहा था अतः नाकके फोटो लिये मैं सीधा अपने अफसरके घर जा पहुँचा। नाकके दोनों नेगेटिव देखकर वे पॉजेटिव बने और एक हफ्तेकी छुट्टी देना उन्होंने स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन नाज़ल स्पेशलिस्टने मेरी नाकको अनेक छोटे-बड़े यन्त्रोंकी कसौटीपर कसा और बताया कि मेरे बायें नथुनेमें कुछ भी नहीं मिलता – वह एकदम साफ है। उन्होंने यह भी बताया कि दर्द और कालिमा 'लोकल' न होकर किसी निगूढ़ विकारसे सम्बन्धित जान पड़ती है। अब हड्डी और नर्वके विशेषज्ञोंसे मिलना लाज़मी हो गया। कहना न होगा कि नाककी इस आकस्मिक समस्याने और विशेषज्ञोंकी रिपोर्टोंने मुझे इतना आतंकित कर दिया था कि पानीकी तरह पैसा बहाने और परेशानी उठानेके बाद भी मेरी नींद हराम हो गयी थी और एक बीमारीको ठीक करानेके प्रयत्नमें ही मैं कई छोटी-मोटी बीमारियोंका शिकार बन बैठा था। हड्डीवाला डॉक्टर मुझे कई दवाएँ पिलाकर नाककी हड्डीका परीक्षण लगातार तीन दिन तक करता रहा और उसके बाद इस नतीजेपर पहुँचा कि नाककी हड्डी कुछ टेढ़ी है। हड्डीके सूक्ष्म कणोंका निरीक्षण करनेके लिए उसने मुझे रीढ़की हड्डीके विशेषज्ञके पास भेजा। इन डॉक्टर महाशयने बड़ी ही बेमुरव्वतीसे एक छोटी-सी रीढ़की हड्डीमें भोंककर थोड़ा-सा पानी निकाला। एक छोटी-सी शीशीमें वह पानी और डॉक्टरकी संक्षिप्त रिपोर्ट लेकर मैं कराहता हुआ नाककी हड्डीके विशेषज्ञके पास लौट आया। डॉक्टर साहबने रिपोर्ट देखी, उस पानीको काँचकी एक छोटी-सी नालीमें खौलाया और तुरन्त बता दिया, "नाककी हड्डी नॉर्मल है।"

अब केवल नर्व-विशेषज्ञको दिखाना बाकी रह गया था पर रीढ़की हड्डी पंक्चर हो जानेके कारण मेरी इतनी हवा सरकी हुई थी कि दो क़दम

चलना भी मुश्किल हो गया था। अतः रिपोर्टोंका एक अच्छा खासा फाइल बगलमें दबाये मैं लँगड़ाता हुआ जो घर पहुँचा तो दो दिन तक चारपाई-से न उठ सका। रीढका दर्द इतना बढ गया था कि नाकका दर्द गायब ही हो गया था। तीसरे दिन पीठका दर्द कुछ हलका हुआ तो नाकका दर्द बढ गया। और नर्व-विशेषज्ञसे मिलना और भी ज़रूरी हो गया। अतः लम्बी नाक और लम्बे बालवाले अपने पडोसीको साथ लेकर मैं नर्ववाले डॉक्टरके अस्पतालमे पहुँचा। उन्होने मेरी नाककी सम्पूर्ण फाइल पढ डाली और तत्पश्चात् मेरी नाकको विजलीके कई 'शॉक' दिये। मैं काँप उठा। उन्होंने बताया कि नाककी नर्व्ज़ सचेत है, उनमें कोई खरावी नही पर मेरा नर्वस सिस्टम कुछ वीक है अत किसी समय मुझे इसका इलाज करवा लेना चाहिए। मेरी नाकको दोवारा देखते हुए नाक सिकोड़कर उन्होने अन्तिम 'वर्डिक्ट' देते हुए कहा, "नाकका दर्द स्थानीय जान पड़ता है यानी 'मस्कुलर'। आप नाककी मासपेशियोके विशेषज्ञको ही कंसल्ट कीजिए और यह सब रिपोर्टें उन्हें दिखाइए। समयपर इलाज नही हुआ तो सेप्टिक हो जानेका खतरा है। उस सूरतमें आपको नाकसे हाथ धोना पडेगा।" नाक कटनेकी कल्पनासे ही मै सिहर उठा और झटपट मासपेशी विशेषज्ञ डॉक्टरसे जा मिला। डॉक्टरने रिपोर्टोंकी फ़ाइल देखी और सन्तोषकी साँस लेते हुए कहा, "ठीक है", और मेरी नाक पकडकर उसका वायाँ छिद्र एक जटिल यन्त्रसे देखना आरम्भ कर दिया। थोडी देरके वाद निःश्वास छोड़ते हुए उसने कहा, "केस काफी विगड चुका है। खैर, मैं अपनी ओरसे पूरी कोशिश करूँगा। पर इसके पहले कि मैं कुछ उपचार करूँ आपको पेथालॉजिस्टसे अपने मल-मूत्रकी भी जाँच करवाकर रिपोर्ट लानी होगी। उसी प्रकार ब्लड टेस्ट करवा लेना भी जरूरी है।" मरता क्या न करता। एक हाथमे टट्टीका डिब्बा और दूसरेमें पेशावकी बोतल थामे दूसरे दिन मैंने वह टेस्ट भी पास कर लिया और रिपोर्ट डॉक्टरके पास ले गया। रिपोर्ट पढ़कर और मेरी नाक देखकर वह जिस

नतीजेपर पहुँचा वह यह था कि मेरी नाककी खालके सेल्स सड़ने लगे हैं और यदि शीघ्र ही सडी हुई खालको काटकर न निकाला गया और दूसरी खाल वहाँ न लगायी गयी तो नाक काट डालनेके सिवा कोई चारा न रहेगा। उन्होंने यह भी वतलाया कि इसे ऑपरेशनके समय स्किन सर्जनकी भी आवश्यकता पड़ेगी और वह कटि विभागका स्पेशलिस्ट होना चाहिए क्योंकि नाकपर चिपकानेके लिए खाल मेरे कटि प्रदेशसे ही काटनी पडेगी और यह काम वही करेगा। इन सवका खर्च पाँच सौ रुपये वैठेगा, नर्सिंग होममें दस दिन रहनेका खर्च अलग। अत' यदि मुझे अपनी नाकको सुरक्षित रखना है तो मुझे पाँच सौ रुपये अग्रिम देकर तुरन्त नर्सिंग-होममें दाखिल हो जाना चाहिए। एक ओर नाककी चिन्ता और दूसरी ओर छह-सात सौ रुपयोकी व्यवस्था करनेकी समस्याने मुझे पागल वना दिया। 'एडमिट' होनेके लिए व्यवस्था करनेके वहाने मैं घर तो चला आया पर इस नयी परिस्थितिने तो जैसे मुझे निष्प्राण ही कर दिया। ऑपरेशनके नामसे मैं वैसे ही घवरा जाता हूँ और फिर ऑपरेशन भी नाकका और सहारा किसीका भी नही। इतने वडे दिल्ली शहरमें मैं अकेला। इस वेवसीमें मुझे एक ही आशा दिखाई दी और वह यह कि अपने ससुर साहवसे रुपये मँगवा लूँ। मैंने तत्काल हिन्दीमें तार दिया — "नाक कटनेवाली है, सात सौ रुपये तारसे भेजिए।" वे समझे मैं किसी घोर संकटमे फँस गया हूँ, अतः घरानेको इज्जतका प्रश्न है, समझकर वे मेरे चारों देहाती सालोके साथ मौजीराम ताडीवाले संसद् सदस्यके नाम सहायताके लिए गाँवके जमीदारका पत्र लिये, तीसरे दिन दिल्ली आ पहुँचे। मेरा गिरा हुआ स्वास्थ्य देखकर उन्हें गहरा सदमा पहुँचा परन्तु नाकका सम्पूर्ण इतिहास सुनकर वे तनिक आश्वस्त-से हुए और कहने लगे: "आप वेकारमें अँगरेज़ी इलाजके चक्करमे पड़े हुए हैं। ये अँगरेज़ी डॉक्टर वातका वतंगड़ वना देते है। पहले कोई देसी इलाज कर देखिए।" और दिन-भरकी दौड़-धूपके वाद एक देहाती वूढेको पकड़ ले आये। वूढेने नाक-

को देखते ही बता दिया कि जुकाममें नाक पोंछते रहनेके कारण नाक छिल गयी है और इसीलिए दर्द भी है। पहाडी बथुआ पकाकर सूँघने और उसे पीसकर नाकपर गरम-गरम लेप करनेसे दो दिनमें नाक और जुकाम दोनों ठीक हो जायेंगे। सच जानिए, इस मामूली-सी पत्तीके इस्तेमालसे मुझे दो ही दिनमें आराम आ गया। नाककी कालिमा भी गायब हो गयी और मित्रोंने कभी भी यह नहीं पूछा कि नाक कैसे ठीक हो गयी। परन्तु मैं बराबर सोचा करता हूँ कि मेरे छुटपनमें गाँवका एक ही डॉक्टर सब प्रकारके रोगोंका इलाज किया करता था और मरीज ठीक भी हो जाया करते थे। आज चिकित्साशास्त्रने उन्नति की है तो प्रत्येक बीमारीके विशेषज्ञ पैदा हो गये हैं। विशिष्ट ज्ञानकी वृद्धिके साथ-साथ साधारण ज्ञानका लोप होता जा रहा है। हम स्पेशलिस्टके पास इसलिए जाते हैं कि हमारी बीमारीका इलाज ठीक और जल्दी हो जायेगा पर बीमारी-का इलाज होनेके पहले ही अनेक परेशानियोंके कारण हम कई और बीमारियोंका शिकार बन जाते हैं। मैं अब निश्चित रूपसे समझने लगा हूँ कि अगामी दस-बीस वर्षोंमें स्पेशलाइजेशनकी इस नयी बीमारीके कारण हफ्तेके हफ्ते बाल कटवाना भी दूभर हो जायेगा। आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए यदि बाल कटवानेका एक सीधा-सा कार्य अनेक विभागों और उप-विभागोंमें विभाजित हो जाये और आपको अनेक नाऊ-विशेषज्ञों-से अलग-अलग और पहलेसे एपाइण्टमेण्ट लेना पडे। क्योंकि बालोंके विभिन्न 'कटों'के अलग-अलग विशेषज्ञ होंगे, इसी प्रकार मूँछ और दाढीके भी। मूँछोंमें भी दायी और बायी मूँछके अलग-अलग विशेषज्ञ हो सकते हैं। और हो सकता है कि यह द्राविडी-प्राणायाम करनेके बजाय आप आपसमें ही एक-दूसरेकी हजामत करना शुरू कर दें।

■

एक समस्या

वर्तमान जीवन समस्याओंका जीवन है। आज जहाँ हमारे सम्मुख एटम बम तथा निःशस्त्रीकरणकी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ मँडरा रही हैं, घूस खोरी, कम खाओ, राजनीतिक दलबन्दी, अधिक उपजाओ पर पैदा कम करो, की राष्ट्रीय समस्याएँ सीना ताने खडी है, वहाँ कुछ ऐसी पारिवारिक तथा वैयक्तिक समस्थाएँ भी है जिनका हल खोज निकालनेमें शुद्ध वनस्पति घी और ख़ालिस सपरेटेकी समस्त पौष्टिक शक्ति लगा देनेपर भी हल नही निकलता। जैसे पत्नीकी तेज-मिजाजी जानते हुए भी हिन्दू कोड बिलका अस्तित्व, हर साल नियमित रूपसे घरकी पलटनमे एक नन्हेकी वृद्धि होना, अचानक किसी सगे-सम्बन्धीका विवाह तय हो जाना जहाँ आपका जाना और कुछ देना आवश्यक हो, रीतिकाल वर्णित सद्यःस्नाता, विप्रलम्भ, मुग्धा, मानिनी और तिलकधारी पण्डितजीके अनुसार निर्लज्जा आदि नायिकाओका प्रत्यक्ष रूपसे सुबह-शाम राजमार्गोपर अवतरित होना, सुबह-सुबह जमादारिनका अकारण झगड़कर काम बन्द कर देना या महीनेके अन्तिम दिनोंमे विना सूचना दिये किसी दूरके रिश्तेदारका शहर देखने आ टपकना – कुछ ऐसी समस्याएँ है जिनमें उलझा हमारा जीवन सुरैया और नरगिसके युगमे विचरनेवाली बहूको देखकर वृद्ध दादा-दादीकी 'हाय-हाय' की भाँति चौबीस घण्टे हाय-हाय करता रहता है।

इन सभी समस्याओके अतिरिक्त एक ऐसी समस्या भी है जो सर्वसाधारण होते हुए भी असाधारण कही जा सकती है, विशेपकर वर्तमान

युगमे। यह निर्वाचनकी समस्या है, पुराने जमानेकी स्वयंवर-प्रथासे भिन्न। जैसे शासनके लिए अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करना, लेकिन उसके लिए आपको परेशान नही होना पड़ता, क्योंकि उम्मीदवारोके खुल्लमखुल्ला और गुप्त प्रसाधन आपको सोचने और परेशान होनेका अवसर ही नही देते। और आप अनायास घर-घर प्रचार करनेके लिए भेजी गयी मेनकाओकी मुसकान, नीले नोटोके आश्वासन या भद्र नेताओके भाषणोसे प्रभावित होकर अपना मत इस प्रकार दे देते हैं जैसे सिरपर आयी बला टाल रहे हों या न टलनेवाले मेहमानको स्वय गाडीमें बैठाने जा रहे हो, जिससे उसके वापस लौटनेकी आशंका न रह जाये। दूसरा निर्वाचन गृहस्थीकी आवश्यकताओसे सर्वत्र सम्बन्धित है, पर उसमें दखल देनेकी आपपर नौबत ही नही आती क्योकि इस मामलेमे श्रीमतीजीकी दृष्टिमें किसी गत अवसरपर आप निरे बौडम सिद्ध हो चुकनेके कारण वे फिर आजीवन कभी आपको ऐसा अवसर ही नही देती जिससे उनकी दृष्टिमें उनके घरका कबाडा हो।

निर्वाचनके इस वर्गीकरणके अतिरिक्त एक और प्रकारका निर्वाचन भी है जिसमें अत्यन्त सावधानीकी आवश्यकता है क्योकि इस दिशामे की गयी जरा-सी भूल आपके फाउण्टेन पेन-हरणसे पत्नीहरण तक पहुँचकर अन्तमें न्यायालयो-द्वारा सुरक्षित, लेकिन आजके युगमें कृश तथा सन्तप्त आपके प्राण भी हरण कर सकती है। यह निर्वाचन मैत्रीसे सम्बन्धित है या हम इसे मित्रोका वरण कह सकते है, अपने स्वभावमे गुण-दोपोकी भाँति प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें कुछ अच्छे-बुरे मित्र होते है, पर जिस प्रकार वह अपने गुण-दोपोकी विवेचना करनेकी चेष्टा नही करता और कोई करे तो चटकने लगता है, उसी प्रकार मित्र बनाते समय वह उन्हें नही परखता। अत: कलका शत्रु आज मित्रके रूपमे आ उपस्थित होता है और खेद तो इस बातका है कि जिस प्रकार आर्य-भूमिमें पत्नियोकी कोई संख्या निश्चित नही, उसी प्रकार मित्र भी असंख्य हो सकते है और उनके वरणके लिए

आपको 'क्यू' में नही खडा होना पडता।

मित्र बनानेके लिए कोई स्थान निश्चित नही होता, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार आजके युगमे ब्लैक मार्केट और रोमांस करनेके लिए कोई स्थान निश्चित नही है। शायद इसीलिए प्राकृतिक हिमालयसे लेकर सरकारी या सामाजिक 'आलयों' की योजनामें 'मित्रालय' का कही उल्लेख नही मिलता, सर्वव्यापी परमात्माकी भाँति मित्र भी सर्वव्यापी है। अतः उसे प्राप्त करनेके लिए साधनाको आवश्यकता नही होती। सफरमे रेल-का डिब्बा, बस स्टैण्ड, गलीके नुक्कड़पर दूकान, नाई का सैलून, क्लब और होटल आदि कुछ ऐसे स्थान है जहाँ वह अनायास ही मिल ज़ाता है जिस प्रकार आजकल किसी सभा-सोसाइटीका सभापतित्व स्वीकार करनेके लिए नेता या मिनिस्टर और कही आपकी श्रीमतीजी स्वरूपवान् और सोशल हो या आपका हाथ काफी लम्बा-चौड़ा हो तब तो मित्र ढूँढनेके लिए आपको कही जानेकी भी आवश्यकता नही, क्योंकि ऐसा सुन्दर अवसर पाकर मित्र-समुदाय स्वयं आपके चारों ओर मँडराने लगेगा, जिस प्रकार हम भारतवासी स्वय ही किसीको प्रतिष्ठा देकर फिर उसीकी खुफिया-बर्दारीमें उसके चारों ओर मँडराते रहते है और आपका सोशल सर्किल इतना बड़ा बन जायेगा कि एक दिन यदि आप विख्यात नेता बननेकी चिरसचित अभिलाषा पूर्ण होते न भी देख पायें तो भी नेताकी पूछ अवश्य बन जायेंगे, जिससे आपकी पूछ चारो ओर होने लगेगी।

मित्रोंका वर्गीकरण

आज विभिन्नता और वस्तु-वैचित्र्यके इस युगमे वर्गीकरणकी आवश्यकता हुई तो इतनी कि उसने एक विकट रूप धारण कर लिया और बेचारे मनुकी वर्ण-व्यवस्थाका विरोध करते हुए भी आज वह इतनी व्याप्त हो गयी है कि मानव-जीवन ही क्या उसने वस्तु-ससारमे अपना आधिपत्य

जमा लिया है जिसके फलस्वरूप बेचारे लक्ष्मीपुत्र मिल-मालिकोंको भी फिल्म-प्रोड्यूसरोंकी फिल्मोकी भाँति सुरैया और नरगिसके वस्त्र-संस्करण निकालने पड गये है, जिससे समानाधिकारके गणतन्त्रवादी युगमें किसीको गिला न रहे कि उनकी पहुँच इन विदुपियो तक नही हो सकती।

विचार-सुविधाके लिए मित्रोको भी हम श्रेणियोमे विभक्त कर सकते है :

शूगर कोटेड् मित्र : शूगर कोटेड् इसलिए कि इस व्यक्तिकी वाणीकी मिठासके पीछे उसका कडवापन छिपा रहता है, जिसको पहचानना उतना ही कठिन है जितना किसी दूकानदारकी लच्छेदार बातोके पीछे उसका हेतु जानना या श्रीमतीजीका एकाएक अपने तेज-मिज़ाजके प्रतिकूल नरम पड़कर आपसे घुल-घुलकर बातें करना। इस प्रकारका व्यक्ति प्रथम मिलनमें ही अपनी आत्मीयता आपपर लाद देता है जैसे न चाहनेपर भी परदेश जाते समय आपका पास-पड़ोसवाला एक बड़ी-सी पोटली या थैला (जिसके रास्तेमें खुल जानेकी आशंका हो) अमुक रिश्तेदारके यहाँ पहुँचानेके लिए आपके मत्थे मढ देता है और मनमें लाख गालियाँ देते हुए भी ऊपरी मुसकराहटसे वह उत्तरदायित्व आपको स्वीकार करना ही पड़ता है।

कवि या लेखक मित्र : ईश्वर न करे, भूले-भटके दुर्भाग्यवश आप किसी कवि तथा लेखककी रचनाकी मुक्त कण्ठसे सराहना कर बैठें। आप तो शिष्टाचारवश या यह जतानेके लिए कि आप रचनाकी गहराई तक पहुँच गये है, सराहना करेंगे, और वह आपके पीछे पड जायेगा जैसे बरसातका मच्छर या बिलूची चाकूवाला। फिर चाहे आपको ऑफिस जानेमें देर हो रही हो या घर प्रतीक्षा करती श्रीमतीजीकी झल्लायी सूरत याद करके रोमाच हो रहा हो, वे एकके बाद दूसरी रचना सुनाते हो जायेंगे, भले ही उनमें-से आपके पल्ले कुछ भी न पड रहा हो और आपको मन-ही-मन कुढते हुए भी आनन्दातिरेकका भाव प्रदर्शित करके वाह-वाह

करनी पड़ेगी ।

गायक मित्र : जबसे हिन्दुस्तान आजाद हुआ है तबसे कई प्रकारके आन्दोलन मलेरिया और रिश्वतखोरीकी भाँति जोर पकड रहे है। फिर चाहे वे सब अव्यावहारिक होनेसे केवल मात्र 'नारों'की ही वस्तु बनकर क्यो न रह गये हो। इन्ही कुछ आन्दोलनो अथवा स्कीमोंमें-से कला और सगीतके पुनरुत्थानसे सम्बन्धित आन्दोलनके अन्तर्गत एक लहर (लहरकी अपेक्षा पिनक कहना अधिक उपयुक्त होगा) केप कामोरीके उद्वेलित हिन्द महासागरसे लेकर हिमालयके उत्तुग शिखरों तक टिड्डी दलकी भाँति आच्छादित हो गयी है। इतना ही नही पाचाल देश भी इससे बच नही पाया है। यह गायनकी पिनक है। वैसे तो गधा भी गाता है, क्योंकि उसके ढेंचूमें संगीतके सप्त स्वरोंमें-से एक स्वर है जिसे भोलेबाबा महादेवजीने सप्त स्वरोके निर्माणके लिए लिया था। इस पिनककी मूलमे वही ढेंचूका सारगर्भित निनाद है या मुकेशका दर्दनाक स्वर या लताका कोकिल कण्ठ या फिर उस्ताद फैयाज खाँ, ओंकारनाथ ठाकुर या अन्य किसी खाँ या नाथ संगीतज्ञके शास्त्रीय पद्धतिका प्रभाव है यह किसी भी योजनाकी भाँति ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। यदि आप इस कथनमे सचाई ढूँढना चाहे तो जरा बीवीका पल्ला छोड़कर मुन्नेको गोदीमें लिये घरसे बाहर निकलिए और देखिए कि ठाकुरद्वारे और धार्मिक स्थानोंपर भी भक्त-समुदाय मीराके भजन, कबीरके दोहे, या 'बानी' अथवा 'छुप-छुप खडे हो जरूर कोई बात है, पहली मुलाकात है' या 'किस्मत हमारे साथ है जलनेवाले जला करें' वाली तर्जोमें किस तन्मयतासे गाता है। फिर भला बिचारा भक्त ईश्वरसे रोमास क्यो न करने लगे।

गुनगुनानेका रोग : हाँ तो आजकल अधिकतर लोगोको यह मर्ज है, और इसीलिए ऐसे लोगोंकी मित्रता भी खतरेसे खाली नही, क्योंकि इनको टट्टीमें, गुसलखानेमें, सड़कपर अक्सर सोते हुए भी, गुनगुनानेका स्थायी रोग रहता है जिसका कोई इलाज नही। ईश्वर न करे आप

किसी ऐसे मित्रसे टकरा जायें क्योंकि उस दशामें 'ऐस्प्रो', 'एनासीन' और 'अमृताजन'का उपयोग करनेपर भी आपका सिर-दर्द 'दर्दे सर' हुए बिना नही रह सकता।

विश्वमित्र : कुछ लोगोंको मित्र बनानेकी हविस होती है, जैसे किसीको बाल नोचनेकी हविस तो किसीको मूंछोंपर ताव देते रहनेकी या दाढ़ीपर हाथ फेरते रहनेकी हविस या किसीको साहित्यिक कहलानेकी हविस होती है। (आखिर हविस ही तो है!) अतः जितने लोग भी इनके सम्पर्कमें आते है उनसे वे तत्काल मित्रताका नाता जोड़ लेते हैं लेकिन उनकी मित्रता चुनावके लिए खडे उम्मीदवारोके वायदोंकी भाँति खोखली और किसी फिल्म एक्ट्रेसके शोख प्रेमकी भाँति अस्थायी और मिथ्या सिद्ध होती है।

अविवाहित मित्र : मनोविज्ञान-शास्त्रके अनुसार कहा जाता है कि विवाहके उपरान्त पुरुष गम्भीर और विवेकी हो जाता है। यानी उसकी गतिविधिपर आवश्यक (और कभी-कभी पत्नी-द्वारा अनावश्यक भी) ब्रेक लग जाता है। अविवाहित व्यक्ति ब्रेकविहीन होता है, वह भावनाओंकी तरगोंमें बिना रोक-टोक बहता रहता है। अतः एक विवाहित व्यक्तिके लिए अविवाहित मित्र बनाना उतना ही 'ट्रैजिक' है जितना कि किसी सोशल तितलीका किसी नवयुवकसे, जो अभी प्यारकी दुनियासे सर्वथा अपरिचित रहा है और प्रेमको आत्माका आदर्श समझता है, मुसकराकर प्यार-भरी दो बातें कर बैठना और उस युवककी धारणा हो जाना कि वह उससे प्रेम करती है। अविवाहित व्यक्ति विवाहित जीवनकी बारीकियोसे परिचित न होनेके कारण किसी भी अवसरपर आपके लिए अनजाने ही मुसीबत खड़ी कर सकता है जैसे निरन्तर आपके घर चक्कर काटते रहनेके कारण किसी छुट्टीवाले दिन सुबहसे शाम तक आपके घर धरना दिये रहनेके कारण बहुत सम्भव है कि आपकी धर्मपत्नी अपना आर्य रूप छोडकर रावणकी परम्पराकी विकरालता धारण करके आपपर

टूट पड़ें, जिसका सीधा-सा परिणाम चूल्हेमें पानी पड़नेसे लेकर हिन्दू कोडबिल पास होनेकी प्रतीक्षा भी हो सकता है। अतः जिस प्रकार विवाहसे पहले अपने भावी साथीको भलीभाँति देखना-समझना आवश्यक है, दूकानदारसे रेजगारी लेते समय उसे निरखना जरूरी है और बात करनेसे पूर्व श्रीमतीजीका रुख देखना अनिवार्य है उसी भाँति मित्र-वरणके पूर्व उसे देखना-समझना और परखना अनिवार्य है, क्योंकि यह भी एक विकट समस्या है।



सुन्दरम् : एक संस्मरण

संस्मरण लिखनेके लिए मैं नेता भी नहीं हूँ। फिल्म-जगत्की कोई लब्ध-प्रतिष्ठ नायक या नायिका भी नहीं हूँ और न ही साहित्यिक जीविकाके संघर्षसे टूटकर बादमें बना हुआ, प्रतिष्ठासे दबा और ऐंठा कोई साहित्यकार हूँ। वैसे देखा जाये तो क्लासमें फिसड्डी रहनेके कारण मैं घर और स्कूलमें कई बार पिट चुका हूँ। 'संगति संग दूषणम्' को चरितार्थ करता हुआ कई बार स्कूलसे भागकर कम्पनी बागकी सैर भी कर चुका हूँ और एक माहकी फीस डकाकर मास्टर साहबका कोपपात्र और माताजी-द्वारा अपनी निजी हॉकीका निशाना बनकर अपने जन्म-दिवसके अवसरपर आमन्त्रित मित्रोंमें बे-आबरू भी हुआ हूँ। गोदाममें निरन्तर चौबीस घण्टे बन्द रहकर गणेशजीके वाहन मूषक महाशयका भी लोहा मान चुका हूँ। पतंग उडाते-उडाते बगीचेके बडे हौज़में लुढककर बलात् जल-क्रीडा करके, गन्दा पानी और मालीकी डाँट भी पी चुका हूँ। एक बार दोपहरीमें चोरी-चोरी अमरूदके पेडपर चढकर हनुमान्जीकी वंश-परम्पराका ऊपर अप्रत्याशित दर्शन हो जानेके कारण गोबरके ढेरमें, जो नीचे खादके लिए सडाया जा रहा था, पछाड भी खा चुका हूँ। और इण्टरव्यूके नाते नौकरीमें घुसते समय इण्टरव्यू बोर्डमें ब्रह्मास्मि, नो डिग्री हेल्ड, यानी नॉनमेट्रिक अफसरके ओष्ठ-कोनोंसे चूती हुई पानकी पीकका रस लेता, घर तथा पडोसमें माताजी-द्वारा प्रस्थापित अपनी बुद्धिमत्तासे अनभिज्ञ नयी दिल्लीको दिल्ली प्रान्तकी राजधानी, बिहारको बंगालका ज़िला और नागपुरकी

स्थिति कानपुर और रामपुरके बीच तथा 'एलेक्ट'को 'सेलेक्ट'का पर्याय बताकर भी पिनकी साहबकी नजरसे गुजरकर नौकरीमें इतमीनानसे जम गया हूँ। पर फिर भी इन बातोमें-से मुझे ऐसी कोई भी बात इतनी महत्त्वपूर्ण नही जान पड़ती जिसका संस्मरणके तौरपर उल्लेख किया जा सके, अथवा जिसे पढकर पाठक मेरे चरित्र, बुद्धि अथवा पर्सनैलिटीकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर सकें और न ही ये बातें मेरे औधे मस्तिष्कमे दाखिल होकर रुक सकी है। सस्मरणके नाते मुझे केवल तीन बातें याद है। एक, विवाहके पहले दरवाजेकी ओटसे झाँकती हुई श्रीमतीजीकी फटी-फटी-सी खिची-तनी आँखें, जो कह रही थी, 'अच्छा आप हैं' और एक कर्कश मोटी-सी गालीका उच्चारण जो लगभग इस देखा-देखीके साथ शायद किसी छोटे भाईको लेकर किया गया था तथा जिसे सुनकर मै भावीकी आशंकासे काँप उठा था। दूसरी बात, श्रीमतीजीके विवाहके दस वर्ष बाद दिल्लीकी तपती धूप और उड़ती धूलमें पसीनेसे लथपथ दोपहरको बाथरूममे नन्हेके पोतडे धोते-धोते रोमाण्टिक होकर लगभग वीस वर्ष पुराना 'ब्रह्मचारी' सिनेमाका गीत 'जमुना बिच खेलूं खेल अकेली क्या साजना' गाना और तीसरी बात सुन्दरम् साहबका सुन्दरतम साक्षात्कार।

सुन्दरम् साहबके व्यक्तित्वको जितनी अमिट छाप मेरे मस्तिष्कपर पडी उतनी अपने उन वहनोईजीके पौरुपकी भी नही पडी, जिन्होने अपने छह वर्षोके वैवाहिक जीवनमें एक दर्जन पिल्लोके पिता कहलानेका अधिकार प्राप्त कर लिया है।

सर्वप्रथम सुन्दरम् साहबका नाम सुनते ही, श्रीमतीजीके विराट् स्वरूप और अटपटे व्यवहारसे संकुचित और दिल्लीकी वसमे वैठी हुई केशवकी आधुनिक चन्द्रवदनी और विहारीकी अप-टू-डेट कामिनीके निकट, एक सीटपर फैलकर वैठे हुए सटे दुष्यन्तके विपरीत और चन्द्रवदनीके समान मेरी सिमटी हुई सुकोमल भावनाएँ इतनी फैल गयी थी कि मुझे एकदम ब्यूटी कॉम्पीटिशनकी याद आकर साहित्यके 'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्'

का सुन्दरम् और विद्यापतिकी सद्यःस्नाता रामा मुझे झकझोरने लगी। तात्पर्य यह कि सुन्दरम् नाममे संचित संसारके समस्त सौन्दर्यने मुझे मधुर-मधुर गुदगुदा दिया। उस समय मुझे अँगरेज़ीके निबन्धकार चार्ल्स लैम्बका 'बेचलर्स कम्पलेण्ट' नामक निबन्ध भी याद नही आया, जिसे मैंने अपनी कच्ची उम्र और 'प्रवेश-द्वार' (एण्ट्रेंस) की पक्की कक्षामे शूकराकार ऊँघते हुए शकूर साहबसे पढा था तथा जिसमें पत्नीकी अपने पतिके अनदेखे मित्रके बारेमें ऊँची-ऊँची कल्पनाका सुन्दर उल्लेख था। इसलिए सुन्दरम् साहबकी सुन्दरताके बारेमे मेरी कल्पना उतनी ही ऊँची पहुँची थी जितनी आईनेमें अपनी शक्ल देखते समय अपने रूपके बारेमें होती है या अपढ किन्तु प्रयत्नशील लालाकी धारणाएँ एक ही कक्षामें पढकर बैठे तथा चार-चार 'मास्टरो'से घरपर पढनेवाले अप्रयत्नशील लल्लाके बारेमे होती है। लाजिमी था कि मै सुन्दरम् साहबसे मिलनेके लिए लालायित होता। उनकी तारीफ भी मैंने सुन रखी थी। सुना था वे बड़े अध्ययनशील है तथा भारतीय सस्कृतिमें अपना सानी नही रखते, पर जब मै उनसे मिलनेके लिए गया तो उनके दरवाज़ेपर लटकी हुई तख्ती देखकर, जिसपर लिखा था, 'मिलनेका समय सुबह छहसे पहले, रातको दसके बाद' मै इतना निराश हुआ जितना क्रॉसवर्ड पहेलियोका प्रथम पुरस्कार पानेकी आशा लगाये बैठा हुआ व्यक्ति अमूमन होता है, तो भी मैंने हिम्मत न हारी, क्योंकि श्रीमतीजीके निरन्तर बारह वर्षके सहवाससे दाम्पत्य जीवनमें उनकी सफलताका रहस्य, लीडरीकी सक्सेसके फॉर्मूलेका मूल तथा सूरदासजीकी 'टेक' का मर्म मेरे तथाकथित चिकने सिरमे (वैसे आपकी सूचनाके लिए—मै गजा नही हूँ बल्कि सिरपर इतने बाल है कि गहनताके कारण बचपनसे निरन्तर प्रयत्न करते रहनेके बावजूद झुकनेका नाम ही नही लेते, मानो वे मिल्टनके कथन – दोज आल सो सर्व हू स्टैण्ड ऐण्ड वेट–के ही अनुयायी हों) पैठा हुआ था, अतः दूसरे दिन तड़के उठकर जमुहाइयाँ लेता और धुआँ छोड़ता, सुन्दरम् साहबके

दौलतखानेपर हाज़िर हुआ। दरवाजा खटखटानेमें मैंने शायद अनजाने ही अपने चिर-सुप्त पौरुषको जागृत कर दिया था, क्योंकि खड़खडाहट सुनते ही खिड़कीका परदा निचली ओरसे थोड़ा सरका तथा उसमें-से किसीकी एक आँख चमक उठी, जिसे देखते ही मुझे लगा मानो सुन्दरम् साहबमें सबको एक आँखसे देखनेका सौन्दर्य भी है। रामायण पढ़ते समय अपनी वृद्धा माँ, मौसी या दादीकी भाँति मै गद्गद हो उठा। लगभग दो-तीन मिनिटके उपरान्त और कुछ कानाफूसीके बाद दरवाज़ेकी चटखनी बड़ी सावधानीसे सरकी और मेरे सामने साढे-चार फ़ुटी फोल्डेड लुंगीधारी भभूतसे अभिभूत काया सहमी-सी (शायद मेरे डील-डौलके कारण) आँखोंमें आर्द्रता तथा कुतूहलके मेलसे एंग्लोइण्डियननुमा भाव लिये खड़ी थी। साँवलेपनकी सीमाका अतिक्रमण करनेवाली उस छोटी-सी चमकीली मूर्तिको देखकर मुझे भारतीय शिल्प-कलाकी याद आ गयी और लगा कि हमारे शिल्पकारोंने अपनी कलामें केवल सुन्दरका संचय करके कुरूप सत्य-की एकदम उपेक्षा कर दी है। कविता लिखनेका लगातार प्रयत्न करनेके कारण मैं अपनेको प्रयोगवादी कहा करता हूँ। और एक अरसे तक इसी रागको अलापते रहनेके कारण प्रयोगवादके बारेमें सम (?) आलोचकों-की असमान धारणाओंका (बेनिफिट ऑव डाउट) मिल जानेके कारण मैं प्रयोगवादी कवि माना जाने लगा हूँ। अतः उस मूर्तिको देखकर मेरे अन्तरतमका प्रयोगवादी कवि हड़बड़ा उठा और मुझे लगा कि वह मांसल मूर्ति न होकर कोई फ़ौलादी मूर्ति है जिसको कालिमाकी रोगनकी स्निग्धताने द्विगुणित कर दिया है। मुझे बादमें पता लगा कि वे नहानेके पहले आइलबाथ और नहानेके बाद चेहरेपर तेल मलनेके अभ्यस्त हैं, क्योंकि उनका विचार है कि ऐसा करनेसे त्वचा मुलायम रहती है। उस मूर्तिसे पूछनेपर जब मुझे मालूम हुआ कि वही सुन्दरम् महाशय हैं तो इस तरह सिहर उठा जैसे जायकेदार भोजनका स्वाद लेते समय दाँतों-तले कंकड़ आ जाता है या लखनऊके अमीनाबाद पार्कके किसी रास्तेपर-से

गुज़रनेवाले ताँगेकी पिछली सीटपर बैठी किसी बुर्केवालीके पैरके सुन्दर-गोरे अँगूठेपर मन-ही-मन मुग्ध होनेके दौरान अचानक उसके मुँहपर पड़ा हुआ परदा हवाके झकोरे उठ जानेके कारण उसका चेचकके दागोसे परिपूर्ण ऊबड़-खावड़ तथा अटपटे नक्शवाला चेहरा दिखाई पड़ जाता है। अपनी सारी सुन्दरतम भावनाओको दवाकर मैंने सुन्दरम्‌जीको अपना परिचय दिया और भारतीय संस्कृतिपर कुछ सुननेके लिए मैं घिघिआया। उन्होने सशक होकर मारवाडी ढगसे मुझे एक वार सिरसे पैर तक निहारा और सूँघनीको सड़सड़ाहट और सरसराहटके साथ ऊर्ध्वगामी करते हुए लगभग काँपते हुए मुझे भीतर बैठनेके लिए कहा। कमरेमे फर्नीचरके नाम फ़र्शपर एक छोटी-सी चटाई फैली हुई थी। एक ओर दो आराम-कुरसियाँ बिछी थी, जिनका चिकना कपडा कबीरके 'लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल' और मीराके 'मै तो तेरे ही रंग राती'की दुहाई देता हुआ तेलके साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर चुका था। सामने मेण्टल पीसपर नटराजकी ताण्डव-नृत्य मुद्रामे एक छोटी-सी काली मूर्ति रखी हुई थी, जिसे देखकर ऐसा लगता था मानो उसके स्रष्टाने सत्य और सुन्दरम्‌का डिक्टेटरीय पद्धतिसे वहिष्कार करके विशुद्ध शिवकी ही सर्जना की हो। मूर्तिके नीचे एक चौकीपर अँगरेजीके तीन-चार समाचारपत्र तथा पानका सामान बिखरा पड़ा था। पास ही रैकसपर अँगरेज़ीकी कई मोटी-मोटी किताबें तरतीवसे रखी हुई थी।

मै एक कुरसीपर बैठ गया और सुन्दरम् साहब नीचे चटाईपर लुंगी जाँघो तक बटोरकर विराजमान हो गये। वातचीत शुरू करनेके निमित्त मैंने दिल्लीके मौसमके वारेमे जिक्र किया, 'यस, यस' आँखें तरेरकर ऐंठे-से वे कड़कडा उठे, "देहली क्लाइमेट्राइज़ लाइक दैट, यू वोण्ट फाइण्ड इट इन मद्रास" और यह कहकर उन्होने इस प्रकार मुँह वना गरदन हिलायी जैसे जो कुछ उनके चारो ओर है वह एकदम डिसेपाइण्टिग हैं तथा युग-युगान्तरमें भी उसमें सुधार होना सम्भव नहीं। चर्चाका विषय

दिल्लीके मौसमसे चलकर वाया बम्बई और कलकत्ता मद्रास पहुँचकर अड गया। मद्रास और मद्रासी विषयक उनका बखान सुनना मेरे लिए लाभदायक साबित हुआ, क्योंकि उसके पहले मद्रासके बारेमें मेरा ज्ञान बंगलौरी साडी तक ही सीमित था जिसकी यादगार सुन्दरम् साहबके व्यक्तित्वके बोझके नीचे दबी होकर भी सजीव थी, क्योंकि अभी कुछ दिन पहले ही श्रीमतीजी बंगलौरी साड़ीके बाहर और कुछ न देखनेपर तुली हुई थी और मुझे साड़ीकी सुन्दरतामें छिपे अर्थके यथार्थको देखना लाजमी था। परिणामस्वरूप श्रीमतीजीने बंगलौरी साडीका नाम ले-लेकर कई साड़ियोंकी धज्जियाँ उडायी। और मैंने अपनी इकलौती सात वर्षीया लड़की 'नन्ही'को सुबह-शाम चावसे भोजन करते देखकर तीन दिन तक उपवास किया। कहना न होगा कि उसमे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी उपवासोका समावेश था।

सुन्दरम् साहबके मुँहसे मद्रासकी भूरि-भूरि प्रशसा सुनकर मुझे लखनऊकी रेवडियाँ याद आ गयी। रेवड़ियाँ समाप्त करके मै सण्डीलेके लड्डुओका आस्वादन कर ही रहा था कि सुन्दरम् साहब घरघरा उठे और मुझे लगा कि किसी खाली मटकेमें कुछ कंकड़ डालकर मटका ज़ोरसे हिला दिया गया हो। मै समझा, कोई कुत्ता घरमें घुस आया है, पर सुन्दरम् साहबके यह कहते ही कि आपको ऐसी कॉफी उत्तर हिन्दुस्तानमें देखनेको भी नही मिलेगी, खास मद्रासमे मँगवाया करता हूँ — मै समझ गया कि उनका वह रेंकना झिडकना न होकर श्रीमती मीनाक्षीजीको कॉफ़ी तैयार करनेके लिए मुलायमियतसे दिया गया आदेश था। कॉफी आते-आते सुन्दरम् साहबने संसारके लगभग सभी 'इज्मो' पर एक छोटा-सा 'अथरिटेटिव' व्याख्यान दे डाला। उन्होने बताया कि मद्रासमें नटराजन नामके तीन शिव है तथा तीन विष्णु भी है। एक शिव और एक विष्णुको जाननेवाला मै 'उत्तरीय' हिन्दुस्तानी मुँह बाये सोचता रहा कि सचमुच मद्रास अद्वितीय है जहाँ एकको जगह तीन-तीन विष्णु और शिव

रहते हुए भी आपसमे नही झगड़ते तथा अपने सीधे-तिरछे चन्दनधारी भक्तोके परस्पर वैमनस्यको अनादि कालसे चुपचाप सहते चले आ रहे हैं। सुन्दरम् साहबने यह भी बताया कि मद्रासमें एक ऐसा भी स्थान है, जहाँ घरका मुखिया घरवाला न होकर घरवाली हुआ करती है। यह बात सुनते ही मुझे विश्वास हो गया कि अपने रामकी 'जानकीजी' भी पिछले जन्ममें अवश्य मद्रासिन रही होंगी।

सुन्दरम् साहबकी बातें लच्छेदार थीं तथा उनकी भाव-भंगी और शब्दोंके उतार-चढ़ावने उन्हे और भी चटपटा बना दिया था। अतः मैं उन्हे बडे चावसे सुन रहा था। तभी भीतरी दरवाजेकी ओटसे पतली काटती-सी नाचती आवाज़ आयी। हड़बड़ाकर मैंने उस ओर देखा तो साक्षात् मीनाक्षीजी एक लम्बी-चौडी साडीमें उलटी-सीधी लिपटी फँसी-सी दोनो नथुनो और कानोंपर जडाऊ गहने खोसे गलेको स्वर्णिम जेवरोसे कसकर बाँधे हाथोंमें कॉफीके दो पीतलके गिलास जिन्हें प्लेटोंकी जगह दो पतोलीनुमा पीतलके बरतन थामे हुए थे, लिये खड़ी थी। कॉफी 'सर्व' हुई यानी एक पात्र मेरे हाथमें पकडा दिया गया। बरतनके नीचे रूमाल रखकर मैंने हाथोंको तो जलनेसे बचा लिया, पर होठोंको बचाना एक समस्या बन गयी। उधर सुन्दरम् साहब कॉफीको दोनों बरतनोमें गट-पट करके मुँह छतकी ओर किये गिलासको मुँहसे लगभग पाँच इंचके अन्तर-पर उठाये टेढा करके गटागट कॉफी गटकने लगे। तभी घरका छोटा नटराजन एक पीतलकी तश्तरीमें कुछ उर्दकी दाल और चावलसे बनी टेढी सख्त सेव ले आया। सुन्दरम् साहबने बड़ी आवभगतसे तश्तरी मेरी ओर बढ़ाते हुए सेवके दो-तीन टुकड़े मुँहमें डाल दिये तथा कुडम-कुडम करते मद्रासी डिशेज़की सराहना करने लगे। उनके कथनसे मुझे समझते देर न लगी कि उनकी अधिकतर डिशेज़ खस्ता या मुलायमियतसे परे उन-जैसी ही कडाकड-कुडम हुआ करती हैं। शिष्टाचारवश मैंने सेवका एक टुकड़ा मुँहमे डाला, पर उसे चबाना उतना ही कठिन था जितना दिल्ली-

की किसी बसमें छुट्टीके रोज़ जगह पाना। पैनी दृष्टिवाले सुन्दरम्ने मेरी मुश्किलको समझते हुए कहा, "यू विल लाइक ईडली ऐण्ड मसाल डोसा बेटर।"

"और मुझे 'टाइम्स ऑव इण्डिया'का वह कार्टून याद आ गया जिसमे जगद्‌विख्यात 'बाबूजी' केलेके पत्तेपर खाना खानेमें अपनेको असमर्थ पा रहे है।

सुन्दरम् साहबको चटाईपर बार-बार नितम्ब बदलते और चुटकी बजा-बजाकर जम्हाई लेते देखकर मेरा ध्यान उनके पूजा, भोजन और दफ़्तर आदि अवशेष नित्य क्रमकी ओर गया। मै उनका लाख-लाख शुक्रिया अदा करके उनके यहाँ खाना खाने, मद्रास जाने, कॉफ़ीका सेवन करने, ग्राण्ड ट्रंक एक्सप्रेससे सफ़र करने और मद्रासी कपडा प्रयोगमें लानेका आश्वासन देकर मैंने उनसे विदा माँगी।

रास्ते-भर मै सोचता रहा कि नामकरणपर कण्ट्रोल आवश्यक है। सरकारको चाहिए कि सोशियो-नेम रिसर्चके अन्तर्गत विशेषज्ञोका एक कमीशन बैठाकर रिसर्च कराये तथा नामकरणको पूर्ण रूपसे नेशनलाइज़ कर ले। घर पहुँचा तो श्रीमतीजी नयी साड़ी पहने बनी-ठनी 'नन्ही'को सजा रही थी। उनका यह अप्रत्याशित रूप देखते ही मै ठिठक गया। और वे दौडकर मुझसे लिपट गयी। नन्हीकी तुतलाती भाषा और लाड़भरे ढंगसे ज़िद्द करते हुए उन्होने कहा – 'आज मै दफ़्तर नहीं जाने दूँगी', और मुझे भी तब हमेशाकी भाँति रूखे अफसरकी खुर्राट शक्ल देखनेकी बलवती इच्छा नही हुई। पत्नी महाशयाके साफ-सुथरे चेहरेमें सुन्दरम्का छछूंदरी चेहरा एक बार चमका और विलीन हो गया। पर अपनी छाप मेरे मस्तिष्कपर हमेशाके लिए छोड़ गया। इसे संस्मरण न कहूँ तो क्या कहूँ?



झगड़ेकी कला

जब मै प्रथम बार दिल्ली देखने आया और कुतुबकी लाटसे लेकर चाँदनी चौककी चाटके पत्तों और केलेके छिलकोसे विभूपित सडक तक देख डाली, तब मै किसी भी चीज़से इतना प्रभावित नही हुआ जितना एक बातसे।

पता नही आपने उसपर विचार किया है या नही, पर बात वास्तवमें विचार करने योग्य है, क्योकि वह विश्वव्यापी, सर्वत्र प्रस्तुत और सर्व-कालीन है। न तो उसके समक्ष लिंग-विचार है और न उसे जात-पाँतसे ही कुछ सरोकार है। वह एक पाशविक प्रवृत्ति होते हुए भी एक ऐसी कडी है जो दो व्यक्तियोके सम्बन्धको स्वभावतः तोड़नेके लिए अग्रसर होकर भी जोड़ती है। आप कहेंगे कैसी उलटी बात है और यदि इत्तफाक-से आप कोई लम्बे केशधारी, सुरीले गलेवाले साहित्यिकोकी सोसाइटीमें पले कवि हुए तो 'विरोधाभास' कह देंगे। पर बात कुछ ऐसी ही है क्योकि इसके बिना 'जोडना'का अस्तित्व ही नही रहता। यह मनुष्यकी आदिम चार पाशविक मनोवृत्तियोंमें-से उस मनोवृत्तिकी सहोदरी है जिससे पुरुप स्त्रीसे सम्बन्ध जोडकर दिन-ब-दिन मानव-सृष्टिका जोड़ बढानेमें बेजोड साबित होनेकी होड लगाये हुए है। यह झगड़नेकी वृत्ति है। अँगरेजीमे यह 'सेल्फ एजर्शन', आजकल सभ्य समाजकी परिमार्जित भापामें असहमति, अशिक्षितोकी फूहड़ भापामें हाथापाई तथा मध्यमवर्गकी बोलचालकी भापामे 'झड़प' कहलाती है। इसीको विज्ञान जगत्मे 'फ़िक्शन', बाज़ारमें दंगा, परिवारमें कलह, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमे युद्ध,

यारोंकी यारीमें बेवफाई, पति-पत्नीमें अनबन, लैला-मजनूँकी दुनियामें शिकवा-शिकायत और साहित्यिकोंमें कलम लड़ाना कह सकते हैं।

झगड़ेकी यह प्रवृत्ति आदिम है और चिरन्तन भी। अतः दिल्लीमें इसका होना उतना ही स्वाभाविक है जितना और कहो, पर दिल्लीमें इसका ज़ोर कुछ अधिक है। ऐसा होनेका कारण दिल्लीका राजधानी होना है, या दिल्लीवासियोका जीवन १९४७ के झगड़ेके बाद संघर्षमय बन जाना या खुश्क जलवायुके कारण यहाँकी खुश्कमिज़ाजी इसका कारण हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता, पर है यह सत्य और इसीलिए यहाँ ज़रा-ज़रा-सी बातको लेकर वितण्डावाद खड़ा हो जाता है। साइकिलवालोंमें, दूकानदारो और ग्राहकोंमें, टैक्सी-ड्राइवरोंमें और सवारियोंमें, कनॉट-प्लेसमें सौन्दर्य प्रदर्शनार्थ निकली हुई अमेरिकन पॉलिशवाली रंग-बिरंगी तितलियों और मनचले युवकोंमें या बच्चोंको लेकर परस्पर पडोसियोंमें अकसर झगडोके नये-नये रूप देखनेमें आते हैं। दुर्भाग्यसे यहांके निवासियोंकी भाँति इन रोज़-रोजके झगड़ोंसे परिचित न होनेके कारण या झगडेमें पटु न होनेके कारण जब मैंने पहली बार इस प्रकारके स्वाभाविक नाटकको देखा, तो मुझे आश्चर्य होना लाज़मी था। क्योंकि जो मैंने देखा वह वास्तवमें कम रोचक एवं आश्चर्यजनक न था।

बात यह थी कि दो साइकिलवाले दो विपरीत दिशाओसे बीच बाज़ारकी सडकपर-से गुजरनेवाली एक औरतकी ओर घूरते हुए साइकिलका हवाई जहाज़ बनाये चले आ रहे थे। जब दोनो चौराहेपर पहुँचे तो सहसा उनके चित्तकी एकाग्रता और दृष्टिकी स्थिरता प्लास्टिकके खिलौनेकी भाँति टूट गयी और उन्हें याद आया कि उन्हें मुडना था। याद आते ही दोनोंने साइकिलें मोड़ दी और दोनो कलाबाजियाँ खाकर कपड़ोकी धूल झाडते सर्वप्रथम उस स्त्रीको ओर देखते, कि कहीं उसने उन्हें उस दशामें देख तो नही लिया है, उठ खड़े हुए, स्त्री दूर निकल चुकी थी। यह देखकर शायद दोनोको ही सन्तोष हुआ और उनके औसान

लौट आये। दोनोने सबसे पहले अपनी साइकिलें देखी, एकका पिछला पहिया गरीबके नसीबकी भाँति टेढ़ा हो गया था, लेकिन दूसरीको कोई नुकसान नहीं पहुँचा था। उनके चेहरोंको देखकर जान पड़ता था कि दोनों अपनी भूल जान गये है और इसलिए बिना वितण्डावादके ही वे साइकिलें थामें चल देंगे। भले ही जापानी पद्धतिके अनुसार एक-दूसरेको धन्यवाद देकर या परस्पर हाथ मिलाकर न जायें। लेकिन उनके जानेसे पहले ही वहाँ एक अच्छा-खासा जमघट सड़क रोके इकट्ठा हो गया और दूसरे ही क्षण जिज्ञासा-भरे प्रश्नो और निजी मतोंकी जो बौछार आरम्भ हुई तो एक शोर-सा पैदा हो गया। घटनास्थल ठीक मेरे मकानके नीचे होनेके कारण मैं उस घटनाका पूरा-पूरा आनन्द उठा रहा था। हिमायतियो और विरोधियोंकी उस भीड और उसके उत्साहको देखकर दोनों साइकिलवालोंको लगा कि मानो अबतक एक-दूसरेका गला न दबोचकर उन्होने अपने पौरुषको कलंकित किया है और यह विचार मनमें आते ही जैसे दोनोमे एक नया जोश, एक नयी चेतनाका संचार हो उठा और बिना किसीके प्रश्नका उत्तर दिये ही वे बाज़की भाँति एक-दूसरेपर टूट पड़े। इस आकस्मिक (पर अपेक्षित) परिवर्तनके साथ ही भीड़में उत्साहकी लहर दौड गयी और बीच-बचाव करनेके लिए, जैसा कि प्रायः हुआ करता है, भीड़में-से ईश्वरलाल या याकूबका तमाशा या अमेरिकन फ्री-स्टाइल बाऊट देखे हुए कुछ पैंतरेबाज़ निकल आये और उन्होने दोनोंको एक-दूसरेसे अलग करके इस तरह और इतने अन्तरपर पकड़ रखा, जिससे उनके परस्पर प्रहार पूरे वेगसे नही तो आधे वेगसे ही सही, पर एक-दूसरे तक पहुँच अवश्य जायें। बडी मुश्किलसे लगभग बीस मिनिट बाद झगडा तय हुआ। झगडेके इन न्यायाधीशोने जिनमे ताँगेवालो, झोलेवालों, चायवालों, छाबडीवालों या फिर साइकिल-मिस्त्रियोकी ही संख्या अधिक थी, अपने-अपने अपार ज्ञान-द्वारा फैसला करके अपने-अपने विगत अनुभवोका, जिनमें बीच-बीचमें गुलेरीजोकी 'उसने कहा था' कहानीके इक्के-

वालोंकी चटपटी गालियोंके साथ-साथ किसीको पीटने या 'कूटने', किसीका सिर फाड़ने तो किसीके साथ मुतवातर दस वर्ष फौजदारीकी मुकदमेवाज़ी करके उसका वोरिया-विस्तरा विकवाकर उसे जेल करा देनेका निरन्तर उल्लेख था, बखान करके यह जाने विना ही कि झगड़ेका वास्तविक कारण क्या था और यथार्थमें अपराधी कौन था, तितर-वितर हो गये।

इस कलाको देखकर मुझे लगा मानो इस गणतन्त्रवादी युगमें झगड़ना भी अपनेमे एक कला है, जिसमें निपुणता हासिल करना सभीके वसकी वात नहीं। आज शायद वही व्यक्ति झगड़ सकता है जिसने इस कलाको अपने बुजुर्गोंकी देख-रेखमें सीखा हो या जिसने इसे जन्मजात पाया हो। या फिर वह व्यक्ति इस कलामें प्रवीण हो सकता है जिसपर सभ्यताके युगमें भी आदिम युगके संस्कार बने हुए हों। झगडोंमें विजय पानेका भी शायद यही रहस्य है। जो झगड़ेमे निपुण होगा वही कुशलतासे झगड़ भी सकता है, और उसीकी विजय भी हो सकती है, होती है। अपराध किसीका भी हो, जो प्रस्तुत न्यायाधीशोको अपने हाव-भाव, भापा-स्वर, तर्क-क्रोध अथवा अंग-विक्षेपों-द्वारा अनुकूल कर लेता है वही अपनेको निर्दोप सिद्ध करनेमें सफल होता है, क्या यही वात उपर्युक्त किसी भी श्रेणीके झगडेके वारेंमे नही कही जा सकती ? यदि वात ऐसी ही है तो फिर क्यों न ऐसी संस्थाएँ खोली जायें या ऐसी प्रतियोगिताएँ रखी जायें जिनमें झगड़ेके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोमें उचित शिक्षा दी जा सके तथा समय-समयपर सरकार ऐसे झगड़ालू लोगोंकी प्रदर्शनियाँ लगाये जहाँ जनता उनकी विशेपताओंका दिग्दर्शन करके उनसे उचित लाभ उठाकर इस झगड़ेके युगमे या झगडालू आदमियोंके वीच जीवित रह सके। लेकिन ऐसी संस्थाएँ खोलनेके लिए और उनमें उच्च-पद प्राप्त करनेके लिए ही लोगोमें झगड़ा होने लगे तो ? शायद आप कह देंगे – द्वन्द्व सृष्टिका मूल तत्त्व है !



पानवाला

लोग उसे शाहजी कहते है। इसका यह अर्थ नही कि वह वास्तवमे शाह हो, अथवा उसका नाम शाहजी रहा हो। यो तो उसका वास्तविक नाम शायद ही कोई जानता हो, पर इतना सभी जानते है कि उसके इस नाम-का सम्बन्ध न तो शिवाजीके पिता शाहजीसे है और न ही दिल्लीमे कत्ले-आम करनेवाले नादिरशाहसे। शब्दके फ़ारसी अर्थमें भी वह शाह नही कहा जा सकता। फिर भी वह शाह है, जैसे विना दौलतके भी सेठ, विना अनुयायियोंके नेता, विना यथेष्ट लेखनके प्रख्यात हिन्दी लेखक और विना राज्यके भी राज-प्रमुख हो सकता है।

व्यक्तित्व

छह फुट क़द, लम्बा चेहरा, आधे गालो तक रखी हुई नुकीली क़लमे, सफाईसे छाँटी हुई मूँछें, पीछे गरदन तक सुते हुए चमकीले बाल, जेवमे पार्कर पेन और हाथमे वँधी सोनेकी घडीसे आभूषित उसका व्यक्तित्व वर्ग-व्यवस्था और आत्म-लघुताके प्रति विरोधका जीता-जागता प्रतीक है। कहनेको वह पानवाला है लेकिन अन्दाज़में किसी भी राजनीतिज्ञ, धर्म-नीतिज्ञ अथवा सिने-स्टारसे कम नही। उसकी दुनियामें ठेलेवालेसे लेकर, सम्पन्न व्यक्तियों तक सभी शामिल है। उसकी वातोमे पानके कत्थे-चूनेसे लेकर देशके नेता, शासन-व्यवस्था, फिल्मी स्टार और क्रिकेटके टेस्ट मैच और टेस्टके खिलाड़ी—सभी चक्कर काटा करते है। उसकी पानकी

दूकान एक कसौटी है जिसपर देश-विदेशकी सभी समस्याएँ परखी जाती है। कहना न होगा कि उसकी दूकान एक ऐसे मुहल्लेमे है, जहाँ अधिकतर 'क़लमजीवी' लोग रहते हैं। पंजावी दूकानदारकी भाषामें इन क़लमजीवियोको वावूकी संज्ञा दी जाती है। और शाहजी भी वावूको असली मानीमे वावू समझता है या दूसरे शव्दोंमे वह अपनेको किसी भी प्रकार इस मध्यम श्रेणीके उपेक्षित प्राणीसे कम नही समझता। और ऐसा समझनेका कारण ही उसकी दूकानपर, राशनकी दूकान, सार्वजनिक अस्पताल और किसी मन्त्रीकी कोठीकी भाँति सुवहसे शाम तक, 'क्यू' लगा रहता है। जब वह बायें हाथमें पान लिये, दायें हाथसे उसपर चूना फेरता हुआ, सामने खड़े ग्राहकोके मुँहसे अपनी प्रशंसा, कलके पानकी सराहना और मोहनीपर मोहनेका वर्णन सुनता है तो वह इस अन्दाजसे आत्मस्तुति आरम्भ कर देता है जैसे कोई नेता किसी सभाके सभापतित्वके आसनसे श्रोताओके सामने आप-वीतीके संस्मरण तन्मयतासे सुनाया करता है। ग्राहकवर्ग उसकी वातोको चावसे सुनता है। शायद इसलिए कि आजके युगमे वह सुननेका आदी हो गया है। घरमें मालकिनकी, दफ्तरमे अधिकारियोकी और मैदानमे नेताओकी सुननेका उसे अभ्यास हो गया है। साथ ही नये-नये अन्वेषणों, नये-नये शास्त्रों और नयी-नयी साधनप्रणालियोके वारेमें भी नित्य सुनता ही रहता है, फिर पानवालेकी ही क्यों न सुने। और जव उसे इससे पानकी अपेक्षा हो।

प्रथम दर्शन

सर्वप्रथम जव मैंने शाहजीको देखा तो उस समय वह अपने गद्देदार आसनपर वैठा अपने कीमती 'सिगरेट लाइटर'से एक साहवकी सिगरेट सुलगवा रहा था। उन महानुभावके पूछनेपर उसने वताया कि उसने वह 'लाइटर' गत वर्ष वम्बईमे छप्पन रुपयेका खरीदा था। शाहजीको देखकर तथा उसकी वातको सुनकर मुझे एकदम सन् चालीसका अपनी गलीकी

नुक्कडका पानवाला बेनी याद आ गया। और मुझे लगा कि जैसे इन बारह वर्षोंमें दुनिया सचमुच बहुत बदल गयी हो। एक वह पानवाला था, जो बाबूजीको हुजूर और साहब आदिसे सम्बोधित करता था और एक यह पानवाला है, जो बाबुओं-द्वारा शाहजी कहलाकर भी, बाबूजीको बाबू ही नही समझता वरन् हिकारतकी नजरसे भी देखता है। मैंने अनुभव किया कि शाहजीका सोचना बिलकुल ठीक है। आज महत्त्व ही उच्च और निम्न वर्गोंका रह गया है। उच्च वर्गका इसलिए कि वह संख्यामें कम होनेपर भी वैभवशाली है और निम्नवर्गका इसलिए कि वह वैभव-विहीन होते हुए भी बहुसख्यक है और प्रजातन्त्रका सिद्धान्त भी तो गणोंपर ही आधारित है।

शाहजीका टेक्नीक

उधर शाहजी इतमीनानसे चूना लगाकर कत्था पोत रहा था। चूना अधिक देखकर मैंने उससे और कत्था लगानेके लिए कहा। उसने मेरी बातकी ओर जरा भी ध्यान न दिया और पान सामने सन्दूकपर रख बडे कलात्मक ढँगसे उसमे सुपारी डालने लगा—जैसे कोई नेता वृक्षारोपण कर रहा हो या किसी सार्वजनिक भवनके शिलान्यासके लिए कन्नीसे गारा डाल रहा हो। मुँह फट जानेकी आशंकासे, मैंने अपनी बात दोहरायी। और बातके दोहराते ही वह उबल पडा—"जनाब पान लगाता हूँ,"—यह उसने अजीब रुखाईसे कहा जैसे अबतक मै पान नही, घास खाता आया हूँ। "आपने मेरे यहाँका पान नही खाया है," वह नथुने फुलाकर बोला और तब मेरी समझमे आया कि आखिर यह जो 'टेक्नीक'की बीमारी चल पडी है वह किसलिए। कविताका टेक्नीक, गद्यका टेक्नीक, भाषणका टेक्नीक, सम्भाषणका टेक्नीक, (और शायद खाने-पीनेका भी टेक्नीक) आदि यह जो टेक्नीकका परिवार फैलता जा रहा है, उसकी उत्पत्ति अवश्य ही या तो किसी पानवालेके टेक्नीकसे हुई है या किसी

अभिनेत्रीके अन्दाजसे।

अवतक शाहजी पान लगा चुका था। "यह पान खाकर देखिए"— पान मेरी ओर बढ़ाते हुए उसने कहा और सामने खड़े एक पुराने ग्राहक-की ओर देखकर मुसकराया। मुझे लगा जैसे कोई वाज़ीगर 'गुटके'का कबूतर बनाकर मेरे हाथमें दे रहा हो कि देखिए यह जीता-जागता कबूतर है या नही। मैंने पान खाया और जेवसे पैसे निकालने लगा। उधर वह ग्राहकोमे रम गया। एकसे उसके बच्चेके वारेमें पूछा, दूसरेसे मज़ाक किया, तीसरेके साथ 'मैटिनी' देखनेका फ़ैसला किया, चौथेको उसकी वातपर किसी उर्दू शायरका पुराना शेर सुनाया और पाँचवेंको किसी वीमारीका आत्म-विश्वाससे नुस्खा लिखवाया।

जब मै घर पहुँचा तो मुँह फटनेकी पीड़ाके कारण थूक निगलना भी कठिन हो रहा था। शाहजीको सौ बार और अपनी पान खानेकी वलवती इच्छाको पचास वार याद करनेपर भी पीडा कम न हुई। क्या करता— मन मसोसकर रह गया। रातको गानेकी मण्डलीमे जाना था। अतः विना खाना खाये, दिलमें शाहजीको याद लिये, आठ वजेके लगभग उधर चल दिया। कोई उस्ताद मुँह विगाड़े गला साफ कर रहे थे। कार्यक्रम अभी आरम्भ नही हुआ था। जाकर वैठा ही था, उस्तादने तानपूरा उठा लिया। थोड़ी देरमे उस्ताद गरजने लगे, चीखने लगे, वड़वड़ाने लगे, भिनभिनाने लगे। स्वरोंकी दौड़-धूप, श्रोताओंकी वाह-वाह, तवलचीकी वलखाती गरदन और उस्तादके पानसे रँगे होठोंका वार-वार विगड़ना देख भी मै अपनी पीड़ाको नही भूल पाया था। तभी मैंने देखा गानेमें रसलीन शाहजी मेरे पास वैठा अपनी चाँदीकी पानकी डिविया खोलकर मेरी ओर वढ़ा रहा है। 'लीजिए', उसने कुछ उस घनिष्ठतासे कहा, जो घनिष्ठता सफ़र करते दो मुसाफिरोमें सिनेमा हॉलमें पास-पास वैठे हुए दो आगन्तुकोमे, 'क्यू'मे खड़े दो व्यक्तियोमें या एक ही छलना-द्वारा छले गये दो प्रेमियोमें हो जाया करती है।

"अभी तो उसी पानका सुरूर बना हुआ है", मैंने कहा।

"असलमें यह लोग पान लगाना नही जानते"—पानकी गिलौरी मुँहमें ठूँसते हुए उसने धीमेसे कहा—"पान ढंगका लगा हो तो दिन-दिन-भर नशा नही उतरता। मैं जब जोधपुरमे था तो रजवाडेमे मेरे ही यहाँसे पान लगकर जाते थे और वही मेरी मुलाकात उस्ताद करीम ख़ाँसे हुई थी।" वह कह रहा था और मैं सोच रहा था कि शायद वह किसी बडे नेतासे घनिष्ठताकी बात कहे। पर उस्तादकी किसी नौसिखिए गाँव-वालेकी बैलगाड़ीकी भाँति बहकती तानपर अपनी बात अपूर्ण छोड़कर ही वह डोलने लगा। और मैंने सोचा—जैसे प्रत्येक व्यक्ति अपनेमे एक 'टाइप' है, अन्तर केवल हमारे देखनेमे होता है।



भड़कमकर : एक इण्टरव्यू

माँके निरन्तर अनुरोध करनेपर रोटी-पानीकी सुविधाके नाम मैंने विवाह करना स्वीकार कर लिया। मेरी स्वीकृतिमे रोटी-पानीकी सुविधाका जितना महत्त्व था वह आप जानते हैं और बडे-बूढ़े तो भलीभाँति जानते है, पर मै जानता हूँ कि विवाह करानेपर एकदम आमादा हो जानेका एकमात्र कारण जयदेवके 'गीत गोविन्द'का अनुवाद था जिसका पारायण मैं कक्षके एकान्त और रातकी नीरवतामे अकसर किया करता था। 'गीत गोविन्द'की श्रृंगार-भक्ति या भक्ति-श्रृंगारसे अनायास ही मुझमें 'गीत गोविन्द' 'फॉर एडल्ट्स ओनली' होना चाहिए, का प्रवल विचार उठा और साथ ही प्राचीन संस्कृत साहित्यके वारेमें अगाध श्रद्धा भी फूट पडी जिसके फलस्वरूप 'द्रौपदी स्वयंवर', 'सुभद्रा हरण', 'स्वप्नवासवदत्ता', 'अभिज्ञान शाकुन्तल' आदि उपाख्यानोंमे मण्डपके नीचे या किसी मन्दिरके (ओपन एअर थिएटर) यानी प्रागणमे वक्ताओकी विवाइयोसे परिपूर्ण चरण-कमलोके पास और श्रोताओमें पुरुषो और स्त्रियोके बीच 'नो मैन्स लैण्ड' (यदि हुई तो) में वैठकर वडे तन-मनसे मैंने कथाओके कर्णास्वादन के साथ-साथ नेत्रास्वादन करनेमें भी तनिक देर नही की। संस्कृतज्ञ शास्त्रीजी काफ़ी सरस जान पड़ते थे। 'सुभद्रा-हरण'का हवाला देते समय पलथी वदलकर ऊपर विजलीके पंखेकी हवासे इतराती हुई चुटियाको रीफ नॉट' वाँधकर और जाँघको वार-वार थपथपाते हुए उन्होने सस्ते सरस भावसे रमणियोंकी ओर कनखियोसे देखते हुए सस्मित वताया कि

वैदिक विवाहके आठ प्रकार हुआ करते थे। और चुटकी बजा-बजाकर तालिका गिना रहे थे। मै उत्कण्ठित-सा मुँह बाये कभी उनकी चाँदकी ओर देखता और कभी पुलकायमान भक्तिनियोंकी ओर। शास्त्रीजीकी वाक्-गतिको मेरा नौसिखिया स्टैनो-टाइपिस्ट मन ग्रहण न कर सका। अतः मैंने कथा समाप्त होते ही प्रश्न-प्रेषकोमें अपनी बारी लगाये यथासमय रोमांचित होकर शास्त्रीजीसे विवाहके आठ प्रकारोंको फिरसे गिनने तथा तद्‌विषयक लघु मीमांसा करनेका गिड़गिडाकर अनुरोध किया। शास्त्रीजी-ने गुरुवाणीमें मनुस्मृतिको लेकर अपनी स्मृतिके साथ खीचातानी करते हुए ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाचादि विवाहोके नाम गिनकर फुसफुसाते हुए उनकी सरस विलम्बित व्याख्या की और 'तारसप्तक'के स्वरमें महाभारत उद्‌धृत करते हुए बताया कि प्राचीन कालमे उत्तर कुरु देशमें 'गोधर्म'की प्रथा थी जिसे 'यूथ विवाह' कहा जा सकता है। विवाहकी इस दीर्घ व्याख्या और रमणियोके सान्निध्यका मुझपर वही प्रभाव पडा जो 'एडल्ट्स ओनली' चित्रपट देखनेके पश्चात् किशोर-किशोरियोपर पडता है या जयदेवके 'गीत गोविन्द'को पढते समय कक्षामें बैठी हुई वय सन्धिपर पहुँची हुई अनुराधापर पड़ता है। मानस-शास्त्रका तकाजा था कि मै उन सभी प्रकारोको जाने-अनजाने 'ट्राई' करता। अतः निरन्तर प्रात -सायं इण्डिया गेट, कनॉट प्लेस, कॉफी हाउस और सामाजिक एवं साहित्यिक समारोहोका पर्यटन करनेके उपरान्त भी जब मै दैव, गान्धर्व, राक्षस, पैशाचादि किसी भी विधिके अनुकरणमें सफल न हो सका तो जैसे मेरा पौरुष अकुला उठा। पराक्रम, शौर्य, साहस और इनीशियेण्टिवके अभावने मुझमें दीनताका भाव भर दिया। स्वाभाविक था कि मै अपनेको विवाहके अयोग्य समझता और इस विचार-को किसी सत्कार्यकी भाँति अनन्तकाल तक स्थगित कर देता। परन्तु कल माँका पत्र आनेके बाद एक ऐसी घटना घटी जिसने मेरे सुप्त पौरुषको झकझोरकर जाग्रत कर दिया। बात यह थी कि मैं बसमे बैठा बैलोंको

है बाजार। अतः वहाँ लगनेवाले बाज़ारोंके दिनानुसार ही मोहल्लोंका नामकरण हुआ था और उस समय 'फैक्टरी एक्ट' न होनेके कारण सप्ताहके सातों दिन बाज़ार लगा करता था।

शहरकी ख़ाक छानकर भी जब मुझे पता न मिला तो मैंने लक्ष्मी रोडपर ताँगेवालेसे ताँगा रोकनेके लिए अनुरोध किया और नाकका पसीना एक छोटे-से गुलाबी तौलियेसे (जो मैं रूमालके स्थानपर इस्तेमाल किया करता था) पोंछते हुए एक राह चलनेवालेसे धीरेसे पूछने लगा 'गुरुवार पेठ कौन बाजूको पडता है?' यह घटना गुपचुप गलीके पासकी थी। पथिकने क्लासिकल मराठी बोलते हुए हेलाके साथ बताया कि गुरुवार पेठ पर्वतीके पास है। अपने ज्ञानका अभाव ताँगेवालेपर व्यक्त न होने देनेके हेतु मैंने उससे पूछताछ करनेकी बजाय उसे सीधा पर्वतीकी ओर चलनेका आदेश दिया और सन्तोषकी साँस लेते हुए सिगरेट सुलगाया। तीन घण्टे मुतवातिर परिश्रम और स्थानीय पूछताछके पश्चात् पता लगा कि गुरुवार पेठ पर्वतीके पास ही नहीं वरन् पूनामें भी नहीं है, किसी ज़मानेमें शायद रहा हो। आख़िर मैं लक्ष्मी रोड पहुँचा और मेसर्स काले-गोरे ऐण्ड कम्पनी 'महिला केश विन्यास गृह'के बारेमें आख़िरी पूछताछ करने ही वाला था कि सामने उसीकी पाटी (साइन बोर्ड) देखकर मेरा पसीना सूख गया। तर्कशास्त्र और तत्त्वज्ञानके साथ-साथ मराठी और हिन्दीसे काफी खींचातानी करके कानूनसे अनभिज्ञ चार पथिक जन-पंचोंको इकट्ठा करनेके बाद मैं गोटू ताँगेवालेका उसके कहे अनुसार हिसाब करके हाथमें थैला और बगलमें बिस्तरा दबाये माथेका पसीना पोंछता हुआ दूकानकी ओर लपका।

सैलून नील कौशेय वस्त्रोंके परदोंसे समावृत और अगरबत्तीसे धूपित एक आधुनिक ढंगकी दूकान थी। बाहर लगी हुई तख़्तीको देखकर, जिसपर लिखा था, 'सभी प्रकारके महिला कटोंके विशेषज्ञ', मैं दुबकता हुआ पर उत्कण्ठित-सा दूकानमें दाख़िल हुआ। सामनेवाले कक्षमें एक अधेड़

उम्रके काले-से व्यक्ति कोट-पैण्ट कसे माथेपर तिलक लगाये एक पारसी महिलाके भूरे बाल छाँट रहे थे। मौसीके चित्राकनमे वह काफी 'फिट' बैठते थे और रग भी काला था। अतः मैंने समस्त स्नेह समेटकर गद्गद भावसे सम्पूर्ण आत्मीयता बिखेरते हुए उन्हे नमस्कार किया और अपना परिचय देते हुए तपाकसे हस्तान्दोलनके लिए हाथ पसार दिया। मेरे बढे हुए हाथकी ओर दुर्लक्ष करते हुए उन्होने रुखाईसे 'मिलन कक्ष' (ड्राइंग रूम) में बैठनेके लिए कहा। महिलाको बिदा करनेके बाद उन्होने मुझे बताया कि वह श्रीयुत कालेके पार्टनर श्री गोरे है तथा काले साहब दूकानके दशकसमारोहसे सम्बन्धित 'पत्रक' छपवाने प्रेस गये है और मध्याह्नोत्तर यानी तीन बजेसे पहले नही लौटेंगे। गोरे साहबसे पता लगा कि काले भाईका मकान खुन्या (खूनी) मुरलीधरके पास है।

गोरे और कालेके साझेमे कन्हैयाके साँवलेपन और मुरलीधरसे खूनी शब्दका सयोग देखकर मै चिर-वियोगी उर्दू शाइरीके कातिल (जो हिन्दी-में लिंग बदलकर प्रिया हो जाता है) पर विचार करता भाई कालेके घर जा पहुँचा। घरमे कालेकी गेहुँई पत्नी और पाँच काले-गोरे बच्चोके साथ-साथ वृद्धा माँ भी थी जो मौसीके कथनानुसार मेरी फूफी, मामी, मौसी, चाची या ऐसी ही कुछ थी। मेरा परिचय पाकर और मुझे दिल्लीसे आया जान उन्होने इस प्रकार घूम-फिरकर मेरी और मेरी माँकी सराहना की मानो दिल्लीमें नौकरी करके मैंने इन्द्रपुरीका साम्राज्य प्राप्त कर लिया है और दिल्लीमे या दिल्लीसे घटित होनेवाली सभी बातोसे मेरा साले-बहनोईका सम्बन्ध है। वृद्धाके पैर छूते ही मेरी सादगीपर निहाल होकर वृद्धाने फैशनसे शुरूआत करके आजकलके लड़कोपर अनेक प्रकारके आरोपण करते हुए यह भी बतलाया कि आजकल स्त्रियाँ सकेशा होनेके कारण बण्डूभाईका काम काफी मन्दा पड़ गया है। यह और बात है कि बण्डू-जैसे कई दूकानदारोने मिलकर पिछले छह महीनेसे 'केश विमोचन मण्डल' (यूनियन) की स्थापना की है। और इसका प्रतिनिधि मण्डल, जिसमे

नुमायश देखने जा रहा था। अगली सीटपर दो-तीन रंग-विरंगी सिन्धी दुहिताएँ वैठी थीं। वसके अग्रासनपर फुटकर काठीके काष्ठकाय चक्रपाणि (ड्राइवर) समासीन थे। छुहारे-सी शक्ल और निचोड़ी-सी देहके वावजूद उनके चेहरेपर अर्जुनका पराक्रम, भीमकी मूँछें, दुर्योधनकी कुटिलता, कर्णका शौर्य, कान्हाकी लीला और भीष्मके चिररुद्ध पौरुषके साथ-साथ अशोक कुमारका नायकत्व और प्राणका खलत्व एक-साथ विद्यमान था।

अपने गुणोंसे अवगत चक्रपाणि महाशयका 'मिक्स्ड' व्यक्तित्व इतना महान् था कि वह उनकी छोटी-सी काठीमें न समाकर वाहर ढुलका पड रहा था क्योंकि वह वार-वार एक्सीलेटर दवाते और वस मोड़ते समय सडककी ओर देखनेकी वजाय पीछे वैठी दुहिताओंपर ऐंठकर दृष्टिपात करते मानो उनके हाथमें स्टीयरिंग न होकर महाभारतके सूत्रधार श्रीकृष्णका सुदर्शनचक्र हो। उस समय उनके हाथोंकी फैली हुई नसें डालडामें अवस्थित (!) सभी विटामिनोंके एक-साथ जोर मारनेसे और भी फूल जाती थीं। वसके ड्राइवरका अहं देखकर मेरे अन्दरका पराजित पौरुष विलविला उठा। तीन वर्ष पूर्व-पश्चात् पाये हुए मैट्रिकके सर्टिफ़िकेटको याद आते ही (जो मैंने सुनहरी फ्रेम और खूनी रंगके माउण्टमें जड़वाकर वैठकमें लटका रखा है) मेरी वह अकिंचनता तिरोहित होकर मुझमें एक नयी चेतना हाँफने लगी और मैंने तय कर डाला कि विवाहके अखाडेमें अवश्य उतरूँगा।

वैलोंकी नुमायश देखकर मैंने मांको कार्ड लिख दिया और भावीकी सुखद कल्पनामें डूवने-उतराने लगा। पूना शहरसे अपरिचित और अपनी जेवसे परिचित होनेके कारण मारवाडी सेठकी दूरदर्शिता वरतकर अपनी एक दूरकी मौसीके पास, जिससे मिलनेके लिए मैंने पिछले वारह वर्षोंमें वसके आठ आने खर्च करनेकी जुर्रत नहीं की थी, पूनामें अपने कोई नज़दीक या दूरके रिश्तेदारका पता करने जा पहुँचा ताकि पूनामें किसी

होटल या धर्म (?) शालामें ठहरनेके धर्मको टाल सकूँ। मौसीने अपने पोपले मुँहको हिलाते हुए मेरी छोटी-सी वंशावलीका विस्तृत हवाला देते हुए उँगलियोंपर गिनकर बताया कि बण्डू, जो रिश्तेमे मेरे चचेरे भाईके ममेरे भाईका फुफेरा भाई लगता है, आजकल पूनामे ही है। उसकी आयु-का अंकगणित करते हुए मौसीने यह भी बताया कि जब वह पैदा हुआ था उस समय हमारी माँ सातवें महीनेका प्रथम सप्ताह पार कर चुकी थी यानी मेरे बडे भाई साहबसे बण्डू महाशय दो महीने और लगभग बाईस दिन बडे थे। अंकगणितका वह जबानी जमा-खर्च देखकर मुझे लगा कि मैट्रिकमे तीन साल हिसाबमे लुढकनेकी बजाय यदि मौसीसे अपनी जगह इम्तिहान दिलवाता तो मुझे तीन बार फेल होने और अन्तमें तीसरी श्रेणी पानेकी नौबत ही न आती। मौसीकी जानकारीके अनुसार बण्डू भाई एक ज़मानेके बिगड़े हुए नालायक और कुपूत थे क्योंकि सन् '४२के आन्दोलनमें भाग लेकर वह अपनी तीस रुपये माहवारकी रेलवईकी माल बाबूकी नौकरी गँवा बैठे थे और जातिके ब्राह्मण होते हुए भी आज एक गोरे साहबके साथ साझेमें एक 'हेअर कटिंग सैलून' खोले बैठे है और दूकान रुक-रुककर चल भी रही है। सैलूनका उल्लेख करते समय मौसीने तीन-तीन बार धिक्कार कर तीन-तीन बार 'राम' 'राम' कहकर मुँह बिगाड़ा। मैंने खुलकर मौसीकी सराहना की और मन-ही-मन दाढीका सामान न ले जाना तय कर लिया।

दरीका होल्डाल सँभाले हाथमे 'सावरकर छाप' थैला लिये तीसरे दरजेका टिकिट कटवा जनतामे हिचकोले खाता मैं लडकी देखने पूना जा पहुँचा और अपने-आपको ताँगेवालेके भरोसे छोड़कर अपने भाई मैसर्स काले-गोरे एण्ड कम्पनीकी तलाशमे निकल पडा। मौसीके बताये हुए पतेमें-से मुझे गुरुवार पेठ याद था, क्योंकि सारा पता याद रखना मुझे दिल्लीवालेकी तौहीन थी। बचपनमे मैने सामान्य ज्ञान (जनरल नॉलेज) में पढा था कि पूनामें सप्ताहके सात दिनोंके सात पेठ है। पेठका अर्थ

है बाजार। अत· वहाँ लगनेवाले बाजारोंके दिनानुसार ही मोहल्लोंका नामकरण हुआ था और उस समय 'फैक्टरी एक्ट' न होनेके कारण सप्ताहके सातों दिन बाजार लगा करता था।

शहरकी खाक छानकर भी जब मुझे पता न मिला तो मैंने लक्ष्मी रोडपर ताँगेवालेसे ताँगा रोकनेके लिए अनुरोध किया और नाकका पसीना एक छोटे-से गुलाबी तौलियेसे (जो मै रूमालके स्थानपर इस्तेमाल किया करता था) पोंछते हुए एक राह चलनेवालेसे धीरेसे पूछने लगा 'गुरुवार पेठ कौन बाजूको पडता है ?' यह घटना गुपचुप गलीके पासकी थी। पथिकने क्लासिकल मराठी बोलते हुए हेलाके साथ बताया कि गुरुवार पेठ पर्वतीके पास है। अपने ज्ञानका अभाव ताँगेवालेपर व्यक्त न होने देनेके हेतु मैंने उससे पूछताछ करनेकी बजाय उसे सीधा पर्वतीकी ओर चलनेका आदेश दिया और सन्तोषकी साँस लेते हुए सिगरेट सुलगाया। तीन घण्टे मुतवातिर परिश्रम और स्थानीय पूछताछके पश्चात् पता लगा कि गुरुवार पेठ पर्वतीके पास ही नही वरन् पूनामें भी नही है, किसी ज़मानेमे शायद रहा हो। आखिर मै लक्ष्मी रोड पहुँचा और मेसर्स काले-गोरे ऐण्ड कम्पनी 'महिला केश विन्यास गृह'के बारेमें आख़िरी पूछताछ करने ही वाला था कि सामने उसीकी पाटी (साइन बोर्ड) देखकर मेरा पसीना सूख गया। तर्कशास्त्र और तत्त्वज्ञानके साथ-साथ मराठी और हिन्दीसे काफ़ी खीचातानी करके कानूनसे अनभिज्ञ चार पथिक जन-पंचोंको इकट्ठा करनेके बाद मै गोदू ताँगेवालेका उसके कहे अनुसार हिसाब करके हाथमें थैला और बगलमें बिस्तरा दबाये माथेका पसीना पोंछता हुआ दूकानकी ओर लपका।

सैलून नील कौशेय वस्त्रोंके परदोंसे समावृत और अगरबत्तीसे धूपित एक आधुनिक ढंगकी दूकान थी। बाहर लगी हुई तख्तीको देखकर, जिसपर लिखा था, 'सभी प्रकारके महिला कटोंके विशेषज्ञ', मै दुबकता हुआ पर उत्कण्ठित-सा दूकानमें दाखिल हुआ। सामनेवाले कक्षमें एक अधेड

उम्रके काले-से व्यक्ति कोट-पैण्ट कसे माथेपर तिलक लगाये एक पारसी महिलाके भूरे वाल छाँट रहे थे। मौसीके चित्राकनमे वह काफी 'फिट' वैठते थे और रंग भी काला था। अतः मैंने समस्त स्नेह समेटकर गद्गद भावसे सम्पूर्ण आत्मीयता विखेरते हुए उन्हे नमस्कार किया और अपना परिचय देते हुए तपाकसे हस्तान्दोलनके लिए हाथ पसार दिया। मेरे वढे हुए हाथकी ओर दुर्लक्ष करते हुए उन्होने रुखाईसे 'मिलन कक्ष' (ड्राइंग रूम) में वैठनेके लिए कहा। महिलाको बिदा करनेके वाद उन्होने मुझे वताया कि वह श्रीयुत कालेके पार्टनर श्री गोरे है तथा काले साहव दूकानके दशकसमारोहसे सम्वन्धित 'पत्रक' छपवाने प्रेस गये है और मध्याह्नोत्तर यानी तीन वजेसे पहले नही लौटेंगे। गोरे साहबसे पता लगा कि काले भाईका मकान खुन्या (खूनी) मुरलीधरके पास है।

गोरे और कालेके साझेमे कन्हैयाके साँवलेपन और मुरलीधरसे खूनी शब्दका संयोग देखकर मै चिर-वियोगी उर्दू शाइरीके कातिल (जो हिन्दी-में लिंग बदलकर प्रिया हो जाता है) पर विचार करता भाई कालेके घर जा पहुँचा। घरमें कालेकी गेहुँई पत्नी और पाँच काले-गोरे वच्चोके साथ-साथ वृद्धा माँ भी थी जो मौसीके कथनानुसार मेरी फूफी, मामी, मौसी, चाची या ऐसी ही कुछ थी। मेरा परिचय पाकर और मुझे दिल्लीसे आया जान उन्होने इस प्रकार घूम-फिरकर मेरी और मेरी माँकी सराहना की मानो दिल्लीमें नौकरी करके मैंने इन्द्रपुरीका साम्राज्य प्राप्त कर लिया है और दिल्लीमे या दिल्लीसे घटित होनेवाली सभी वातोसे मेरा साले-वहनोईका सम्वन्ध है। वृद्धाके पैर छूते ही मेरी सादगीपर निहाल होकर वृद्धाने फ़ैशनसे शुरूआत करके आजकलके लड़कोपर अनेक प्रकारके आरोपण करते हुए यह भी वतलाया कि आजकल स्त्रियाँ सकेशा होनेके कारण वण्डूभाईका काम काफी मन्दा पड गया है। यह और वात है कि वण्डू-जैसे कई दूकानदारोंने मिलकर पिछले छह महीनेसे 'केश विमोचन मण्डल' (यूनियन) की स्थापना की है। और इसका प्रतिनिधि मण्डल, जिसमें

अग्रगण्य वण्डू ही है, वम्वईके मुख्य मन्त्रीसे मिलने तथा अपनी माँगें पेश करने जा रहा है। विश्वस्त सूत्रोसे पता लगा है कि वम्वई राज्य मद्रास राज्यका सहयोग प्राप्त करनेवालोंकी समस्यापर नये सिरेसे विचार करनेके लिए एक 'वाल-कमीशन' बैठानेवाला है जिसके पाँच सदस्योंमें-से तीन नाई होंगे, एक महिला और एक कोई लब्ध-प्रतिष्ठ गंजा व्यक्ति।

वृद्धा यह जानकर अत्यन्त पुलकायमान हुई कि मै लडकी देखने आया हूँ। अपनी कण्ठस्थ सूचीका तनिक ज़ोरसे पारायण करके उन्होने भडकमकर साहवसे अपना दूरका रिश्ता भी ढूँढ निकाला।

शामको कालेसे मुलाकात हुई तो वे साँझके अँधेरेमे भी गोरे नज़र आये। मुझसे मिलकर उनके माथेपर वल अवश्य पडे पर इतनी आत्मीयता उन्होने अवश्य दिखायी कि रातो-रात भिखारीदास मारुतिने जाकर लड़की देखने-दिखानेकी व्यवस्था करा डाली।

दूसरे दिन सिल्ककी पतलून पहने, जो विस्तरमें वँधनेके कारण सिकुड़ गयी थी, और नया सर्जका कोट ताने मै काले भाईके साथ लडकी देखने जा पहुँचा। भडकमकर साहवके मकानके सामने ताँगेसे उतरते ही एक मुण्डित मस्तक वृद्धा उत्कण्ठित-सी सामने आयी और आँखोपर सीधे करतलका वितान ताने अपने पोपले मुँहको हिलाते हुए वारीकीसे मेरा सिंहावलोकन करने लगी। भावी ससुरालकी वडी-बूढी समझकर मैंने यथाशक्ति विनय विखेरकर उन्हे नमस्कार किया। यह मैंने वादमे जाना कि वह मेरी भावी सास या ससुरकी अम्मा न होकर उनके पडोसी राव-साहवकी महाराजिन थी और मेरे आगमनका समाचार पाते ही तपाकसे चायमें नमक डालकर अपनी सम्पूर्ण सीनियरिटी चरितार्थ करती मेरे निरीक्षणके लिए आ उपस्थित हुई थी।

देखने-दिखानेकी व्यवस्था भड़कमकर साहवके पडोसी राव साहवके दीवानखानेमें की गयी थी, यानी वावा आदमके ज़मानेके एक पुराने मकानकी वैठकमें। कहना न होगा कि दीवानखानेकी मात्र दो खिड़कियोंके

खुले शीशे ही गायव न थे वरन् चौखटें भी भूतपूर्व हो चुकी थी। बीचमें राव साहबके पितामहका झूला लटक रहा था और कोनेमें लकडीका एक ढीला तख्ता बुढापेकी समस्त जर्जरताको समेटे आडा पड़ा था। सामने एक पुरानी थिगलियोसे परिपूर्ण दरी अपनेको अधमैली चादरसे ढँके किसी सोशल वर्करके कार्य-कलापोकी भाँति फैली हुई थी तथाकथित चाँदनीपर, जिसपर घरके नन्हे-मुन्नोकी अविराम लीलाओके कारण कई धूसर-वादल उमड़ आये थे। राव साहब हथेलीपर तम्बाकू और चूना मलते नगे वदन विराजमान थे और एक ओर पाँच-छह बच्चे उल्लसित हो-होकर चाँदनीपर कुलाँटिया खा रहे थे। मुझे देखते ही राव साहब उठे और तपाकसे कमीज़ और टोपी पहनकर और मुँहमें स्वच्छन्द विचरण करनेवाली पीकको बाहर एक ओर मुक्त करके सामने आये और बड़ी आवभगतसे मुझे चाँदनीपर बिठाकर मेरे साथ वैठ गये। पैण्टको पाजामा वनाये मै भी दरीके वीचो-वीच आरूढ हो गया।

मेरे दीवानखानेमे पहुँचनेकी खबर फैलनेकी देर थी कि दीवानखाने-की खिडकियो, दरवाजो और औसारो और झरोखोसे झाँकी शुरू हो गयी। यानी असख्य बालिकाएँ, वृद्धाएँ, और युवतियाँ निरन्तर मेरे कान, नाक, मुँह, बाल और काठीका X-रे करने लगी। कहना न होगा कि दर्शिकाओ (!) में वृद्धाओकी सख्या ही अधिक थी। इस देखा-देखीसे मैं इस कदर नर्वस हुआ कि भूल ही गया कि मुझे भी किसीको देखना है। अपनी नर्वस-नेस छिपाने तथा अपनी योग्यता बघारनेके लिए मैने राष्ट्र-भाषाकी कोविद परीक्षाके समूचे ज्ञानको बटोरकर और वसमें देखे हुए चक्रपाणीको बरावर स्मरण करके हिन्दीमें वोलना तय किया। गुलावी रूमाल-नुमा तौलियेमें जोरसे नाक साफ करते हुए कुछ बोलनेके लिए मैं पलथी वदल ही रहा था कि एक सज्जन धोती, कमीज़ और एक असमर्थ निरीह सिकुडे हुए मज़दूरकी भाँति सिकुडा, ओछा ऐश कलरका एक कोट, काली टोपी और पैरोमें विवाइयोसे तादात्म्य स्थापित करनेवाली श्रीहीन

(पॉलिशहीन) चप्पलें पहने और हाथोमें दस साल पुराने थैलेका एक कान पकडे (दूसरा कान निरन्तर पकडे जानेके कारण टूटकर लटक गया था और उसे ठीक करनेके लिए की गयी सर्जरीके टाँके अब भी दृष्टिगोचर हो रहे थे) सतर्कतासे दीवानखानेमे पधारे और मेरी दृष्टि उनपर अटक गयी। कमीजका गलेका बटन निरन्तर बन्द रहनेके कारण किसी बुरका-वालीकी तरह उनके गलेकी नसें बाहर झाँक रही थी। दीवानखानेमें दाखिल होते ही आगन्तुकने सतर्कतासे चारो ओर देखा और चाँदनीपर बैठ गये। राव साहबने पीकसिक्त होठोसे पीकको तिरोहित करते हुए परिचय कराया।

"आप ही भडकमकर हैं, हमारे पुराने स्नेही—सुमतिके पिता" भडकमकर साहबकी तोलती हुई दृष्टि मुझपर गाजकी तरह गिरी और राव साहबकी दृष्टिसे टकराकर 'अर्थ' हो गयी। मैंने झटसे हाथ जोड़ दिये और उत्तरमे गम्भीरतासे उनका सिर गिरगिटकी तरह ईषत् झुका और उठकर अकड़ गया।

उन्हीके पीछे-पीछे सुमति हाथमे स्टेनलेस स्टीलकी ट्रेमे चार सिंगल कप और चार चिवडेकी तश्तरियाँ लिये सहमी-सी, दबी-सी, झुकी-सी, घटना-स्थल (?) पर अवतीर्ण हुई और राव साहबके कहनेपर ट्रे नीचे रखकर भड़कमकर साहबके पास गरदन झुकाये चाँदनीके नीचे छिपी जमीनको पैरके अँगूठेसे कुरेदनेका असफल प्रयत्न करती बैठ गयी। मानो इस 'दीवानखाने' शब्दमे आभासमान श्री ही साकाररूप धारण करके बैठी हो।

"यह हमारी सुमति है, उसकी पीठ थपथपाते हुए राव साहब गिड-गिड़ाये। मेरी आँखें सुमति-गामी होनेके लिए उठीं और राव साहबसे चार होते ही धराशायी हो गयी। सुमतिने मुझे देखा या नही, मैं ठीक-ठीक नही कह सकता पर मेरा अनुमान है कि उसने अवश्य मुझे दृष्टि गड़ाकर देखा था क्योकि तब मैं भीतर-ही-भीतर पसीना-पसीना हो उठा

था। अपने अन्तरतमका समस्त साहस बटोरकर मै अपनी धराशायी आँखें उठानेका प्रयत्न करने ही वाला था कि भड़कमकर साहबने सन्दिग्ध दृष्टिसे मेरा नीचेसे ऊपर तक निरीक्षण करते हुए अक्खड़ स्वरमें मुझसे पूछा :

"आप कितने भाई-बहन है ?"

"मै अकेला ही हूँ।"

"ठीक, पिताजी क्या करते है ?" उन्होने फिर गम्भीर स्वरमें पूछा।

"अध्यापक थे", मैंने रूमालसे मुँह पोछते हुए कहा।

"माँ तो होगी ही।"

"जी।"

"दादा-दादी, चाचा-चाची, और कोई ?"

"दादा-दादी जीवित नही। चाचा-चाची है पर वह अलग रहते है।" मैंने खिसियायी-सी आवाजमें कहा।

"नही, मैंने कहा सुमतिकी रुचि कला-कौशलकी ओर अधिक है। गृह-कार्य जानती अवश्य है पर····।"

"मुझे भी कलासे प्रेम है। विशेषकर लेखन-कलासे। हिन्दीमें लिखता हूँ। कोविद परीक्षा भी पास की है।"

"सुमति भी मराठीमें लिखती है। उसका लेख दीपावली अकमें प्रकाशित हो चुका है। वैसे उसने हिन्दीमे 'परिचय' परीक्षा भी पास की है। कल मामा वरेरकरके 'भूमि कन्या सीता' नाटकमें वह उर्मिलाका काम कर रही है।" उन्होने ऐंठकर कहा।

"तब तो मैं नाटक अवश्य देखूँगा।" मैंने कृतकृत्य होते हुए कहा। वैसे सुमतिका नक्श भी कुछ वैजयन्तीमालासे मिलता-जुलता था और उसका नाट्य-कलामें प्रवीण होना वह क्वालिफिकेशन थी जिसपर दिल्ली-जीवनमें मेरी सफलता निर्भर थी।

"अवश्य देखिए, पर आपकी माहवार आमदनी···जायदाद, खेती,

कुछ ?"

"तीन सौ। वैसे कुछ लेखोंसे भी मिल जाता है। घरका मकान भी है, ग्वालियरमें। चचेरे भाई रहते है।"

"तीन सौ ही कहिए, लेखोकी आमदनीका क्या भरोसा? और रिश्तेदारी ठीक है पर रुपये-पैसे, जायदादका काम चोखा होना अच्छा रहता है। क्यों राव साहव ?" उन्होंने राव साहबकी ओर मुडकर कहा। "ठीक है, क्यों राव साहव, मियाँ-बीवीका गुज़ारा हो सकता है। (तनिक रुककर) एक बात और, आप जानते है मै पोस्ट मास्टर था पर दस साल पहले रिटायर हो चुका हूँ। इसलिए यदि आप दहेजकी अपेक्षा रखते हों तो वह हमारे वशकी बात नही। साफ की हुई बात अच्छी होती है। क्यों राव साहव, उन्होने सिरको अकस्मात् उछालकर राव साहबकी ओर देखा।

"मै दहेजमे विश्वास नही करता।" मैने सगर्व कहा।

हुँकारी देते हुए उन्होने फिर एक बार सिर हिलाया और अपनी पैनी दृष्टिसे मेरा Xरे ले लिया और इण्टरव्यूका उपसंहार करते हुए वह कहने लगे :

"अच्छा होता यदि आप पूनामे नौकर होते", स्वरके गाम्भीर्यने मेरी मुलायम कल्पनाओको अकस्मात् झकझोर दिया। सिटपिटाकर अनजाने ही मेरे मुँहसे शब्द निकल पड़े :

'पूनाकी अपेक्षा बम्बई...." और यह कहकर जैसे मैने उन्हें आहत कर दिया हो।

"आप बम्बईवालोको नही जानते...." उन्होने तिलमिलाकर कहा, और अन्तरतमके समस्त उद्वेगको हथेलीकी तम्बाकूपर रगड़कर क्षण-भर मौन रहनेके पश्चात् अटक-अटककर कहने लगे—

"और सब बातें ठीक है पर असल बात यह है कि हमारी सुमति कलाओमे निपुण होते हुए भी बड़ी अल्हड़ है। मै उसे जी-जानसे चाहता

हूँ। यदि वह सुखी न हो सकी तो मेरी तो कमर ही टूट जायेगी।"

"उसी समय सुमतिकी बड़ी-बड़ी चंचल आँखें मुझे हिप्नोटाइज कर गयी।"

"आप निश्चिन्त रहे" मैंने सकुचाते हुए कहा और भड़कमकर साहबके पदागुष्ठपर दृष्टि गड़ा दी।

"अच्छा, अच्छा...." आश्वस्त होकर समस्त इण्टरव्यूमे पहली बार भड़कमकर साहव ईपत् मुसकराये और मुझे लगा मानो मेरी साँस फिरसे चलने लगी है।

"पर उन्हे भी तो पूछ लिया जाये", मैंने सकुचाते हुए सुमतिकी ओर इशारा करते हुए भड़कमकर साहबसे कहा और संकुचित दृष्टिसे सुमतिकी ओर पहली वार देखा तो वह उठकर जा रही थी।

"वडी शर्मीली है" – जाती हुई सुमतिकी ओर दुलार-भरा दृष्टि-क्षेप् करते हुए राव साहबने गद्गद होकर कहा और चायकी ओर मुड़े।

"लीजिए न" और एक सिंगल कप (यानी आकारमे साधारण प्यालेसे लगभग आधा) मेरे हाथमे आया और चौथाई छटाँक चिवडेकी एक चमकीली तश्तरी सुपारीपर लड्डू धारण किये मेरे सामने रख दी गयी। उस सिंगल कप और आहारकी मात्रा देखकर मुझे लखनऊकी नजाकत याद आ गयी। और लगा कि यदि खाद्य समस्या पूनावासियोंके हाथमे सौंप दी जाये तो भारत सरकारके 'अधिक उपजाओ'के मोटे व्यय-की ही बचत नही होगी, वरन् उत्तरापथमे फैलनेवाले वायु-विकारका भी अनायास ही इलाज होकर स्वास्थ्य-मन्त्रालयका पेट बढनेसे रुक जायेगा। सत्य तो यह है कि इस खाद्य-सामग्रीकी मात्राका इतना गहरा इम्प्रेशन मुझपर पडा जितना कि सुमतिका भी नही पड़ा था। पेटकी भूख और दिमागकी खीझपर बलात्कार करते हुए मैंने कहा, "इसे रहने दीजिए, अभी-अभी नाश्ता करके आया हूँ, चाय पी लूँगा।" राव साहव और भड़कमकर साहव दोनोको एक साथ सदमा पहुँचा।

"यह कैसे हो सकता है" तश्तरीको मेरी ओर सरकाते हुए उन्होंने आवभगतसे आँखें तरेरते हुए कहा और फैसला आधे लड्डूपर हो गया। खान-पानके दौरान (दौरान इसलिए कह रहा हूँ कि खाना एक ग्रासका होते हुए भी उसे हलकसे नीचे उतारनेके लिए काफी समय लगा क्योंकि पहले तो भड़कमकर साहब नाश्ता करनेके लिए ही तैयार न थे, राव साहबके हीलो-हुज्जत और मेरे निरन्तर अनुरोध करनेपर उन्होंने बचा हुआ आधा लड्डू लेना स्वीकार किया) मुझे पता लगा कि भडकमकर पूनाकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमिके कारण पूनाको भारतकी राजधानी बनानेके हकमें हैं। संक्षेपमें वह इतने व्यक्तिवादी थे कि कोई भी योजना, कोई भी स्कीम, चाहे वह अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, साहित्यिक, कौटुम्बिक क्यो न हो उनकी सर्जरीका विषय बने विना रह ही नही सकती थी। तथा किसी भी दूसरे व्यक्तिसे सहमत होना वह बौद्धिक दरिद्रताका लक्षण समझते थे। पर्यटनकी चर्चा शुरू होते ही उन्होंने अत्यन्त गम्भीरतासे बैठकमें लगी हुई तसवीरोंकी ओर इंगित किया। तसवीरें भडकमकरजीकी 'कश्मीर ट्रिप'का राव साहबके मकानमें विज्ञापन करनेके लिए दीवारपर लटकी हुई थी। पहले फ़ोटोंमे भडकमकर हार पहने अपने कुटुम्ब-सहित बसके अड्डेपर चित्रित हुए थे। दूसरे फोटोमें श्रीमती भडकमकर पहाड़ी टट्टूपर अपनेको लादे मुसकरा रही थी और भडकमकर टट्टूकी लगाम हाथमें थामे खडे थे। तीसरे चित्रका 'पादक' (पादक इसलिए कह रहा हूँ कि शीर्षपर न होने-के कारण उसे शीर्षक कहना युक्तियुक्त नही होगा, यद्यपि अँगरेजीमे उसे कैप्शन ही कहते हैं) था 'कश्मीरमें बर्फ खाते हुए'। और भड़कमकर दम्पति हाथमें लगभग पाँच-सात सेर बर्फके टुकडे थामे खड़े थे। एक अन्य फ़ोटोमें स्त्रियोंकी भोजन-प्रतियोगितासे सम्बन्धित समारोहके व्यासपीठसे वह बोल रहे थे तथा उसी फोटोके दूसरे हिस्सेमे वह अपनी पुत्र-वधूको सर्वोत्कृष्ट पुरणपोली (महाराष्ट्रकी एक विशिष्ट मोटी रोटीका प्रकार) बनानेके लिए पुरस्कार दे रहे थे। कहना न होगा कि फोटो देखकर

और सुमतिकी योग्यतापर विचार करके मैं मन-ही-मन कृतकृत्य हो रहा था।

दूसरे दिन मामा वरेरकरके 'भूमि कन्या सीता' नाटकमें सुमतिका उर्मिलाका रोल देखने एक ओपन थियेटरमें मैं भड़कमकर परिवारके साथ जा पहुँचा। उर्मिलाका व्यक्तित्व सचमुच डायनॉमिक था और काम भी इतना उभरा था कि स्टेजके लक्ष्मणके प्रति मन-ही-मन जलते रहनेके कारण साधारणीकरणके अभावमें भी मैं रस-सिक्त होता रहा। पहला अंक समाप्त होते ही भडकमकर साहब वडी आवभगतसे सुमति-द्वारा मेरा अन्य पात्रोंसे परिचय करानेके लिए मुझे स्टेजके पीछे ले गये। स्टेजके पीछेका ड्रामा तो सचमुच रोमाचकारी था। नाटकके राम, लक्ष्मण, वशिष्ठ और हनुमान्‌जी वस्त्राभरणोसे सुसज्जित बड़ी बेतकल्लुफीसे मुँहमे बम्बई छाप बीडी दबाये दम लगा रहे थे। सीता हाथमें चायका प्याला थामे उर्मिलासे कुछ कानाफूसी कर रही थी और उर्मिला अपने पर्सकी सामग्रीसे अपना चेहरा उज्ज्वल करनेमें तन्मय थी। वह दृश्य देखते ही मैं 'रसाभास'का अर्थ समझ गया जिसे निरन्तर समझनेका प्रयत्न करते हुए भी मैं अपने जीजाजीकी भाँति, जो पचास साल पार करनेके बाद भी थर्मामीटर देखना नही समझ पाये है, अनजान बना हुआ था। मुझ अपात्रका पात्रोंसे परिचय अवश्य हो गया पर दिलमें एक टीस निरन्तर उठती रही जिसका निवारण लगभग एक महीने बाद उस दिन हुआ जिस दिन 'शुभ मंगल सावधान' के साथ विवाहमे सुमतिके साथ फेरे पड़े और अग्निकी साक्षी रखकर खुल्लमखुल्ला हम दोनोंका गठबन्धन हो गया।

विवाहका प्रथम वर्ष सुगमतासे गुजर गया। दूसरा अटक-अटककर और तीसरा तो जैसे अगम-सा हो बैठा है। इन तीन वर्षोंके दौरान हम चार व्यक्ति हो गये है। बाकी दो व्यक्ति मेरे डायरेक्ट चार्जमें है। सुमतिको सोशल ऐक्टीविटीज इतनी बढ गयी हैं कि मैं सर्वथा 'पेसिव' बन गया हूँ। हर समय बच्चोकी देखभाल किया करता हूँ। इतवारको हम

साइकिलवाला

नेताओं तथा फिल्म स्टारोंको आप प्रायः बस या टैक्सी भाडा खर्च करते देखते हैं और यह भी सच है कि नेताओंको देखकर आप प्रायः निराश हो उठते हैं और फिल्म स्टारोंके दर्शनसे आपमें एक हीनताका भाव आ जाता है। इसकी प्रतिक्रिया यह होती है कि या तो आप बच्चोंपर झुँझलाने लगते हैं या दफ्तरी दुनियाकी जिस छोटी-बड़ी कुरसीपर आप विराजमान होते हैं वहाँ अपना अहं और भी जोरसे जताने लगते हैं। परन्तु आज इन वाचाल नेताओंसे और झिलमिलाते सितारोंसे एकदम दूर मैं आपको एक ऐसे व्यक्तिका दर्शन कराऊँगा जिसे देखकर आप स्वयंको केवल धन्य ही नहीं मानेंगे वरन् 'डिगनिटी ऑव लेबर'की एक नयी चेतनाका भी अपनेमें अनुभव करने लगेंगे। यहाँ यह भी बता दूँ कि ये व्यक्ति कोई सामाजिक जानवर नहीं हैं जिससे आप सर्वथा अनभिज्ञ हों। आप उसे नित्य ही अनेक बार देखते रहते हैं परन्तु बार-बार देखते रहनेके कारण आप उसे नहीं देख पाते, ठीक उसी प्रकार जिस तरह आप पोस्टमैनको तथा अपने दुर्गुणोंको देखकर भी नहीं देखा करते। इस व्यक्तिको न देख पानेका एक और भी कारण हो सकता है और वह यह कि वह प्रायः ऐसे स्थानपर अपना आसन जमाये रहता है जहाँ दो सडकें एक-दूसरेको काटा करती हैं और आप उस काटसे बचनेके लिए बहुधा कोई 'शार्ट कट' निकालकर चौराहेसे बच निकलते हैं।

आपको मेरे कथनपर विश्वास न हो तो किसी भी चौराहेपर क्षण-भर-

के लिए रुक जाइए और ठण्डे दिमागसे अपने चारों ओर देखिए और आप देखेंगे — किसी पेड़पर लटका साइकिलका एक पुराना घिसा हुआ टायर ! यदि आप क्षण-भरके लिए अन्तर्मुखी हो जायें तो आपको लगेगा मानो उस टायरमें और आपमें किसी भी चीजका अन्तर नहीं है। क्योंकि उस टायरकी ही भाँति जीवन-पथपर निरन्तर घूमते रहनेके कारण घिस जानेके बावजूद आप टायर ही की भाँति वैसे ही शून्याकार बने हुए हैं जैसे आप यात्राके आरम्भमें थे। अकस्मात् इस सत्यके उद्घाटनके कारण यदि नवोढाकी तरह आपकी आँखें क्षण-भरके लिए झुक जायें तो आप देखेंगे— एक पम्प जो शून्याकार टायरके ठीक नीचे आपके अहंकी भाँति तना हुआ खड़ा है जिसका एकमात्र कार्य अन्य शून्याकार टायरोंमें फूँक भरना है। चौंकिए नहीं, पम्पको मैंने अहंकी उपमा इसलिए दी है कि पम्पमें अपना कुछ भी न होकर वह निरन्तर बाहरसे हवा खींच-खींचकर दूसरोंमें फूँक भरता रहता है। व्यवहारमें यही बात अहंके बारेमें भी कही जा सकती है क्योंकि दार्शनिक दृष्टिसे जो कुछ भी आप हैं वह स्वयं आपकी उपज नहीं है और इसलिए व्यक्तिमें अहंकी भावनाको हमेशा ही अवांछनीय माना जाता रहा है। ध्यान रखिए, मैं यहाँ केवल दर्शनकी ही बात कह रहा हूँ। व्यक्तिवादी द्रष्टा क्या कहते हैं उनकी चर्चा मैं नहीं कर रहा हूँ क्योंकि उनका वाद शून्यकी भाँति व्यक्तिसे उत्पन्न होकर व्यक्तिमें ही समा जाता है।

हाँ, तो यदि आप ज़रा और देखनेका प्रयास करें तो आप देखेंगे कि पम्पके आस-पास आपकी अपनी मान्यताओंकी भाँति कई उपकरण यानी औज़ार बिखरे पड़े हैं जो दो पहियोंसे चलनेवाली पैरगाड़ीको दुरुस्त करनेके लिए काममें लाये जाते हैं। इनके पीछे आपको एक ऐसे व्यक्तिके दर्शन होंगे जो अपनेमें नेता, अभिनेता, दार्शनिक, हीरो सब एक-साथ होगा। क्योंकि नेताका भाषण, अभिनेताकी अदा, दार्शनिकके विचार और हीरोका 'ड्राइव' या 'पुश' इन सब गुणोंका दर्शन आपको एक-साथ इस

व्यक्तिमें होगा। आपको यकीन न हो तो आप उससे ज़रा बात क
देखिए। उसे केवल राजनीतिके बारेमें ही कुछ कहना नहीं होगा ब
वह आपको यह भी बतायेगा कि किस प्रकार एक समय अग्रगण्य नेताअ
घनिष्ठ सम्पर्कमें था और किस प्रकार तात्त्विक मतभेदके कारण वह उ
उलझ पडा और फिर उन नेताओं-द्वारा अनेक बार बुलाये जानेपर
उसने लौटकर उनकी ओर नहीं देखा। वह यह भी जरूर बतायेगा
जब वह बम्बईमें था, तो प्रायः सभी अभिनेता उसे बहुत चाहते थे।
उसके बचपनके यार थे और उनके साथ उसने कई 'शूटिंग्स'में भाग लि
था। यदि वह 'मूड'में हुआ तो साइकिलमें हवा भरते-भरते वह
रोककर किसी प्रसिद्ध अभिनेत्रीके साथ अपनी प्रणय-कथाका भी रोम
कारी वर्णन करेगा और वह आपको विश्वास दिला देगा कि बेवफ
कारण ही उसने उसे छोड दिया और यद्यपि अब भी उसके पास
अभिनेत्रीके बराबर पत्र आया करते हैं परन्तु वह उनका जवाब तक
देता। क्योंकि वह समझता है कि स्त्रीका सबसे बडा गुण 'वफाई'
इसी वर्णनके दौरान उसके दार्शनिक विचार प्रबल हो उठेंगे और
ईमान, धर्म, नीति आदिके बारेमें एक अच्छा-खासा लेक्चर झाड़कर उ
उपसंहार, आज नारी-संसारके अपनाये हुए सौन्दर्य-प्रसाधनोपर कटु
करके करेगा। और आप गहन विचारोंमें डूबते-उतराते सोचने लगें
विधाताकी कैसी करनी है जो ऐसे मौलिक विचार और उच्च सिद्धान्त
व्यक्ति चौराहेपर पड़े सडा करते हैं। इसी बीच यदि आपके सौभ
सडकपर कोई दुर्घटना हो जाये या कोई झगड़ा हो जाये तो आप
बिगडी साइकिल थामे विवशतासे देखेंगे कि वह व्यक्ति छलाँग म
घटना-स्थलपर पहुँच गया है और एक सरपंचके अन्दाज़से न्याय दे रह
आपको देखकर आश्चर्य होगा कि न तो वह व्यक्ति कानून जाननेवा
और न कोई सफेदपोश सम्मानित व्यक्ति है परन्तु ऐसे झगड़ोंमें आम
से यह व्यक्ति एक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करता है और उसीकी बात

भी ली जाती है। शायद इसीलिए कि वह स्वयंसिद्ध न्यायाधीशका काम करता है और समयानुकूल देनेके लिए गालियों और जमानेके लिए हाथोंकी उसके पास कमी नहीं होती। साधारण पढ़े-लिखे नागरिकके लिए दुर्लभ इस सुविधाके कारण ही इस व्यक्तिमें अपने पेशेके विषयमें एक ऐसी भावना प्रबल हुई दिखाई देती है जिसके कारण वह अपने पेशेको सर्वोत्कृष्ट समझकर आप-जैसे अन्य सभी सफेदपोश लोगोंको हीनताकी दृष्टिसे देखा करता है।

मेरी खोजने मुझे बताया है कि ऐसे सभी व्यक्तियोंमें ठीक वही गुण होता है जो नेताओंमें हुआ करता है फिर चाहे वे नेता राजनीतिक नेता हों, साहित्यिक नेता हों, दलीय नेता हों या निर्दलीय हों और वह गुण है बचपनमें आवारा होकर घरसे भाग निकलना। आपको विश्वास न हो तो आप किसी भी बड़े आदमीके जीवन-चरित्रकी छानबीन करके देखिए। आप देखेंगे कि वह अवश्य ही छुटपनमें घरसे भाग निकला होगा क्योंकि उसमें कुछ ऐसी बात रही होगी जो उसकी तत्कालीन परिस्थितियोंसे मेल नहीं खाती थी। महानताके इस रहस्योद्‌घाटनके साथ ही आप यह भी समझ जायेंगे कि टायरकी भाँति घिस जानेके बाद भी आप क्यों दुनियाकी दृष्टिमें एक महान् व्यक्ति नहीं बन सके। और इस दृष्टिसे आपमें और उस व्यक्तिमें जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है मैं एक मजेदार साम्य देखता हूँ और वह यह कि आप दोनों ही समझते हैं कि आप महान् व्यक्ति हैं यद्यपि दुनिया आप दोनोंको कुछ और ही समझती है।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि आप घरसे भागें ताकि आप महान् व्यक्ति बन जायें। उस दशामें वही कहावत चरितार्थ होगी कि 'चौबेजी गये थे छब्बे बनने और रह गये दुबे ही।' क्योंकि ऐसी दशामें पम्प थामे चौराहेपर बैठनेके बजाय आप निस्सन्देह लोगोंको काटना शुरू कर देंगे। परन्तु मैं नहीं चाहता कि आप लोगोंको दाँतोंसे काटें और बन्दर कहलायें, अतः मेरा आपसे अनुरोध है कि जो कुछ आपने मेरी आँखोंसे देखा है उसे एकदम अनदेखा कर दें और समझ लें कि मुझे पागल कुत्तेने काट खाया है।



दो नाक : एक कहानी

मानवीय सौन्दर्यमे नाक एक वहुत ही महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करती है परन्तु भारतीय शिल्पने जितना महत्त्व आँखोको दिया है उतना नाकको नही दिया। इसके कारणपर जितना ही विचार करता हूँ समस्या उतनी ही जटिल होती जाती है। सौन्दर्यशास्त्री शायद कहेंगे कि चेहरेपर जहाँ सबसे पहले हमारी दृष्टि पडती है वह है आँखें। आँखोंका सम्बन्ध सीधा हृदयसे माना गया है और चूँकि मनुष्य भावनायुक्त जीव है, वह परस्पर भेंटमे आँखों-द्वारा ही दूसरे व्यक्तिके हृदय तक पहुँचकर उसके भावोंको टटोलनेका प्रयत्न करता है। हो सकता है कि सौन्दर्यशास्त्रियोकी यह दलील रोमाण्टिक जगत्मे ठीक भी हो जहाँ आँखोमें आँखें डालकर देखनेका आम रिवाज है, परन्तु साधारण व्यवहारमें हम इस प्रकार एक-दूसरेकी ओर घूरकर नही देखते है और यदि दूसरा व्यक्ति भूलसे कोई मृगनयनी हो तो इच्छा होनेपर भी हम उसकी आँखोंकी ओर टक लगाकर नही देख सकते, क्योंकि उस दशामें वह केवल अशिष्टता ही न होगी वरन् मृगनयनीकी मुलायम जूती और हमारी कठोर चाँदका तत्काल ही सम्बन्ध भी स्थापित हो सकता है। जो देखनेवालेका अभीष्ट कदापि नही हो सकता।

अच्छा, जहाँतक हृदय टटोलने और भावोंको जाननेका प्रश्न है, तो वह भी हमें नही जँचता। सो, इसलिए कि प्रत्येक व्यक्तिके पास हृदय होता है, यह एक अत्यन्त विवादास्पद प्रश्न है। यह मान भी लिया

जाये कि कुछ व्यक्तियोके पास वह होता है तो व्यवहारमे वह अपना हृदय बन्दरकी तरह घरपर ही छोडकर आते हैं। महिलाओंकी तो बात ही दूसरी है। क्योकि प्रेमका पुजारी हर जला-कटा प्रियतम समस्त नारी जगत्को ही हृदयहीन मानता है। ऐसी दशामें हमे विवश होकर कहना पड़ता है कि सौन्दर्यवादियोकी आँखोके विषयमें यह धारणा एकांगी है तथा वस्तुस्थितिसे कोसों दूर है। आजका मनुष्य पूर्ण रूपसे बुद्धिवादी बन जानेके कारण हृदयसे बहुत दूर हट गया है। उसके सारे व्यापार बुद्धिसे नियन्त्रित होनेके कारण जिस चीजको टटोलनेकी हमे आवश्यकता होती है वह है उसका मस्तिष्क। मेरी समझमें मस्तिष्कका सुलभ द्योतक केवल नाक ही हो सकती है और इसलिए मै मानने लगा हूँ कि आजके युगमें मनुष्यको समझनेके लिए यदि सबसे सुलभ उपाय है तो वह है नाक-का सर्वेक्षण। काले चश्मेके भीतर आँखें भले ही अगोचर हो जायें, पर नाक सर्वदा आपके सम्मुख खड़ी रहेगी।

उपरोक्त विवेचनमें शास्त्रीय दृष्टिसे कोई कमी रह गयी हो तो कृपया मुझे क्षमा करें क्योंकि न तो मै कोई सौन्दर्यशास्त्री हूँ और न मैंने मनो-विज्ञानके ग्रन्थोको चाटकर यहाँ उगलनेका ही प्रयत्न किया है। यह मेरे निजी विचार है और सच देखा जाये तो इस नाजुक प्रश्नपर विचार करनेकी भी मुझे आवश्यकता नही थी। आँखें बड़ी हों या नाक — मुझे क्या? पर जिस बातने मुझे इस दिशामें सोचनेके लिए मजबूर किया वह थी मेरी पुरानी बीमारी और वह यह कि जब भी कोई व्यक्ति मुझसे बातें करता है तो मेरा सारा ध्यान उसके चेहरेकी ओर लगा रहता है। परिणाम यह होता है कि वह अपनी बात कह जाता है और मै बिना उसे सुने उस व्यक्तिका मुंह ताकता रहता हूँ। इसका मतलब यह नही कि मै उसकी बात समझता ही नहीं। समझता अवश्य हूँ पर शब्दो-द्वारा नहीं, समझता हूँ उस व्यक्तिके हाव-भावों-द्वारा। इन हाव-भावोंको उस व्यक्तिके नाकका स्फुरण ही मुझ तक पहुँचाता है। आप मनोविज्ञानकी

परिभाषामें इसे कुछ भी कहें मेरा यह अटूट विश्वास है कि आजके युगमें मनुष्यको जाननेके लिए सबसे पहले उसका अहं जानना बहुत ज़रूरी है। और यह अहं व्यक्तिकी नाकमें ही प्रतिबिम्बित रहता है। ऐसा न होता तो 'नाक रह जाना', 'नाक कट जाना', 'बडी नाक होना', 'नाक रगड़ना' आदि व्यक्ति-परिचयात्मक मुहावरे हिन्दीमें कदापि प्रचलित न होते।

मनुष्यके चेहरेमें नाक यदि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण न होती तो लक्ष्मणजी शूर्पनखाकी नाक कदापि न काटते और न ही संस्कृत भाषामें स्वर्गको 'नाक' कहा जाता।

अनुभवसे मैं यह भी मानने लगा हूँ कि जिस व्यक्तिकी नाक जितनी बड़ी होती है अहंकी भावना भी उसमें उतनी ही अधिक होती है। चौपायोंमें प्रायः सभी जानवरोंकी नाक लम्बी होती है अतः कुछ अपवाद छोड़ दिये जायें तो इन सभी जानवरोंमें 'सेल्फ एसर्शन'की मात्रा अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा अधिक होती है।

अपने कथनकी सम्पुष्टिके लिए मैं यहाँ केवल उन दोनों नाकोंकी चर्चा करूँगा जिन्हें बराबर देखनेका और उनपर मनन करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। कहना न होगा कि यह दोनों नाकें मैं रोज़ छह घण्टे देखनेका अभ्यस्त हूँ क्योंकि यह दोनों व्यक्ति मेरे सहयोगी हैं। 'योगी' शब्दका प्रयोग यहाँ मैंने शब्दके चालू अर्थमें ही किया है क्योंकि यह दोनों व्यक्ति योगी न होकर केवल मेरे साथ काम किया करते हैं।

इन दोनों नाकोंमें-से असली नाक कुछ अधिक लम्बी, उद्गमके स्थानपर पतली और सिरेपर सहसा मोटी और कुछ नीचेकी ओर झुकी हुई होनेके कारण धनुषाकार-सी है। मुझे स्मरण है कि कुछ वर्ष पूर्व यह नाक छोटी थी, परन्तु इन दिनों काफी बढ़ गयी है और आगे चलकर शायद और भी बढ जाये। आरम्भमें नाकका पतला होना इन महाशयके आधारभूत संकुचित स्वभावको सूचित करता है परन्तु आगे चलकर

अकस्मात् उसका लम्बा-चौडा और लचीला होना क्रमशः उनके अहं, सर्वव्यापकता और कभी-कभी अन्तर्मुखी होकर अपने हृदयमे हकीकतको टटोलनेके स्वभावको घोषित करता है। ठीक यही सद्‌गुण उनके स्वभावमे भी एकदम विद्यमान है। यह तो हुई नाकके स्थायी रूपकी बात। अब उसके अस्थायी रूपपर भी जरा विचार कर लें। अस्थायी रूपसे मेरा मतलब नाककी उन 'हरकतों'से है जो विशिष्ट परिस्थितियोमें हुआ करती है। 'हरकत' शब्दका प्रयोग मैने यहाँ उर्दू अर्थमे किया है, क्योकि हिन्दीमें ढूँढनेपर भी मुझे ऐसा कोई शब्द नही मिला जो नाकके संकुचन-प्रसारण, स्फुरण आदि व्यापारोको एक ही शब्दमे सही-सही व्यक्त कर सके। हाँ, तो कुछ विशिष्ट परिस्थितियोमें इन महाशयकी नाक अपना रूप बदलनेकी आदी है। जैसे श्रोताओके सम्मुख जब यह नाक मंचपर जाती है तो ऐंठकर सीधी और पैनी हो जाती है जिसके फलस्वरूप मुँहसे निकलने-वाला हर वाक्य बाण बनकर नाककी सीधमे बरसकर सभी श्रोताओको आहत करने लगता है। क्योकि बोलते समय नाक चारो ओर घूमा करती है और इसलिए उन बाणोसे श्रोताओमें-से कोई भी नही बच पाता। महिलाओके सम्मुख वही नाक कभी तो एकदम मुलायम पडकर उसमें सुरसुराहट होने लगती है और कभी ऐंठकर वह एकदम टेढी हो जाती है। कहना न होगा कि नाकका मुलायम पड़कर उसमे सुरसुराहट होना या ऐंठ जाना बहुत कुछ आगन्तुक महिलाकी अपनी नाकपर निर्भर रहता है। अफसरके सम्मुख यही नाक अपनी जगह जाकर लटक जाती है जिससे उसका चेहरा भी लटका-लटका-सा दिखाई देने लगता है। परन्तु अपने सहयोगियोके साथ यह नाक अपने स्वाभाविक रूपमें तभीतक दिखाई देती है जबतक कोई आगन्तुक नही आ जाता। आगन्तुकके आते ही वह अकस्मात् फूल जाती है और सहयोगीको लगता है कि यदि वह तत्काल उठकर बाहर नही आ गया तो वह नाक हनुमान्‌की पूँछकी तरह बढकर उसे वेष्टित करके एकदम बाहर छोड़

आयेगी, अत आप लघुसे लघुतम होकर वहाँसे उठ भागनेके लिए एकदम मजबूर-से हो जाते है।

दूसरी नाक कुछ अधिक सुडौल और पैनी है। उसपर वह धार है जो कब और कैसे काटेगी इसका आप स्वप्नमें भी अनुमान नही लगा सकते। कट जानेके बाद भी आपको शायद ही पता चले कि काटनेवाली नाक कौन-सी थी। यह महाशय जब चलते है तो अकसर इनकी नाक दोनो पैरोके बीचका अन्तर नापती रहती है यानी उसका अग्र भाग ठीक पैरोके बीचो-बीच ताकता रहता है। ऐसा लगता है मानो नाकसे वह यह देखनेके आदी है कि उनके कदम तुले-तुले पड रहे है या नही और इसी प्रकार अपने दैनिक जीवनके कौन-कौन-से पैतरे बदले जायें इस बातको वे अपनी नाकसे ही निर्धारित करते है। अफसरके सम्मुख उनकी नाक नवोढा-सी सिकुडकर मासूम बन जाती है। मानो उसे दीन-दुनिया-की कुछ खबर ही न हो। इस नाकको कभी-कभी ब्लड-प्रेशर भी होता है और जिस प्रकार ब्लड-प्रेशरका कोई निश्चित कारण नही होता उसी प्रकार इस नाकके नथने भी अकारण ही फूल जाते है। ऐसी दशामें यह सज्जन जो अँगरेज़ीमें एक्सटैम्पोर बोलना शुरू करते है तो यह नही देखते कि उनकी भाषा या दलीलें सही है या गलत। यह दूसरी बात है कि नाकका दौरा खत्म होते ही जैसे ही नाक अपना असली स्वरूप धारण कर लेती है वैसे ही यह महाशय घिघियाकर क्षमायाचना करते हुए नज़र आते है। नाकके इस ब्लड-प्रेशरको अपवाद मान लिया जाये तो उनकी नाक इतनी सन्तुलित रहती है कि चारो ओर आपको उसी नाकके दर्शन होने लगते है। फिर आप रेडियोमें हो, विश्वविद्यालयमें हो या किसी प्रकाशक या लेखकके यहाँ हो। इनकी नाक प्वायण्टेड होनेके कारण प्वायण्ट्सकी उनके पास कभी भी कमी नही रहती। फिर चाहे विषय उनसे सम्बन्धित हो या न हो, प्वायण्ट उनके पास मिल ही जायेगा।

मेरा अनुमान है कि दो नाकोंका यह संक्षिप्त विवेचन मेरे कथनकी सम्पुष्टि ही नही करेगा वरन् इन नाकवालोको जाने विना भी आपको विश्वास दिला देगा कि जो कुछ मैंने कहा है वह निराधार नही है। यदि फिर भी आपको विश्वास न हो तो मैं हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करूँगा कि जव भी आपको समय मिले आप अपनी नाकको आइनेमें देखनेकी आदत डालिए जिससे नाकके महत्त्वका उद्घाटन आपके सम्मुख हो सके।



लेखक और नारी

इनसे मिले ? यह है मेरी पत्नी, यानी मेरी वाइफ है। 'शी इज़ वण्डर-फुल' यानी ये अनोखी है। आप स्पेशलिस्ट है, विशेषज्ञ। आप नॉन-स्टाप बोलती है यानी विना रुके एक साँसमे बोलती रहती है। इनके बोल भैरवीके बोल होते है क्योकि आप साक्षात् भैरवी ही है। सुबह उठते ही जो आलाप शुरू हो जाते है तो तानों सहित रातको ही समाप्त होते है। इसका मतलव यह नहीं कि रात तनहाईमें कटती है। नीदमें भी आपका खरज छिडा रहता है यानी जव आप बोलती नही होती तब आप खर्राटे भरती रहती है। यकीन जानिए, इनके बोल मेरे सुरको बेसुरा कर छोड़ते है। कलम हाथमें लेते ही इनका राग शुरू हो जाता है, क्योकि इन्हें इसका रियाज है पर मै कभी भी इनका साथ नही कर सका हूँ। जव मैं किसी सुन्दर-सी कल्पनाको वलपूर्वक घसीटने लगता हूँ और वह वधू-सी झिझकती-झिझकती आने लगती है तभी सासकी खाँसी-सी इनकी आवाज उसे लौटा देती है और मै सुन्न-सा देखने लगता हूँ, देखता रहता हूँ।

आजकी ही वात लीजिए। पिछले एक माहसे सोच रहा था 'लेखक और नारी' पर कुछ लिखूँ। पर जव भी लिखने वैठता हूँ श्रीमतीजीके सव काम एकदम और एक साथ ज़रूरी बन जाते है और क़लम एक ओर घरकर मुझे निष्काम भावसे उन्हे करना पडता है। आज भी वही हुआ। तडके उठा तो लिखनेकी तमन्ना लेकर। वे इत्मीनानसे खर्राटे भर रही

थीं। सोचा 'टोण्ड मिल्क' लाकर रख दूँगा और लिखने बैठ जाऊँगा पर दुर्भाग्य मेरा कि हर ऐसे मौकेपर मुझसे जरूर कोई-न-कोई गलती हो जाया करती है। आप ही वतलाइए मुझे क्या पड़ी थी कि ऐसे अनुकूल वातावरणमें इस इकतारेको छेड़ देता। पर तुलसीदासजीने गलत नही कहा है 'हुइहै सोइ जो राम रचि राखा।' मैं पैसे माँग बैठा। वे झल्लायी-सी उठी तो पैसे तो नही मिले पर भैरवीकी दुगुन चालू हो गयी। वात यह थी कि उनके कलके आठ आने मेरी ही ओर निकलते थे। इन आठ आनोको लेकर उन्होने विगत जीवनका वड़ी ही निर्ममतासे मूल्याकन कर डाला। ऐसे महाभारत या रामायणके समय मै चुप साध जाया करता हूँ। (यहाँ रामायण शव्दका प्रयोग मै पारायणके अर्थमें कर रहा हूँ। मेरा ऐसा करना प्रयोगवादमें फिट न वैठता हो तो प्रयोगवादी लेखक भाई मुझे 'इगनोर' कर दें) मै ऐसा इसलिए करता हूँ कि श्रीमतीजीका शव्द-भण्डार अपार होता है, प्रहार अचूक और आक्षेप असीम। उनकी वाक्‌गति और शव्द-प्रयोगोमें वाधक वननेका अर्थ अनर्थके वहुत निकट हुआ करता है और यह मै ही नही सभी जानते है। सो आज भी मै दव गया। केवल दव ही नही गया, जहाँसे वे उठी थी, वही मुन्नेके साथ रजाईमें जम गया। वे शायद तीन घण्टे तक वोलती रही, चहकती रही, भनभनाती रही, फटफटाती रही, झल्लाती रहीं और मै सोचता रहा कि लेखकोकी वीवियाँ उनकी साहित्य-सर्जनामे प्रेरक होती है या वाधक। ये वीवियाँ क्यो लेखकोको निकम्मा समझती है ? और समझती है तो क्यों उन्हीकी रचनाओसे रस-स्निग्ध होती है ? श्रीमतीजीका कहना है कि लेखकका दृष्टिकोण अपनी पत्नीके प्रति एक और नायिकाके प्रति दूसरा होता है। यह केवल आक्षेप है या वास्तविकता ? इसी वातपर विचार करते-करते न जाने कव श्रीमतीजीके वोल मुझे दूर-दूर जाते हुए-से प्रतीत होने लगे और थोडी ही देर में मै महिलाओंकी एक अलग दुनियामें जा पहुँचा। वहाँ कई महिलाएँ मुझसे एक साथ मिलनेके लिए फड़फड़ा रही थी। प्रेस

इण्टरव्यूके कोलाहलसे मैं परिचित था, पर यह 'नारी इण्टरव्यू' मेरे लिए एकदम नयी चीज थी। पूछनेपर पता चला कि इस जमघटमें वाल्मीकिकी सीता, शूद्रककी वसन्तसेना, भासकी वासवदत्ता, कालिदासकी शकुन्तला, तुलसीदासकी जानकी, जयदेवकी राधा, प्रसादकी श्रद्धा, गुप्तजीकी यशोधरा, जैनेन्द्रकी सुनीता और अज्ञेयकी रेखा है और ये सब मुझसे इण्टरव्यू चाहती हैं।

इन सभी महिलाओंका अपना-अपना दृष्टिकोण है जो इनके निर्माताओंकी कृतियोंमें व्यक्त नहीं हुआ। मैं घिघियाया कि मैं हिन्दीका एक छोटा-सा लेखक हूँ। हल्की-फुल्की चीजें लिखता हूँ जिन्हें आलोचक रचनात्मक साहित्य नहीं मानते, अतः इन सिद्धहस्त लेखकोंकी कृतियोंपर मत देनेका मैं अधिकारी नहीं हूँ, आप मुझे क्षमा करें। पर जब उन्होंने मेरी एक न सुनी और मुझे लेखकोंका प्रतिनिधि समझकर मेरे साथ खींचातानी शुरू कर दी तो अपनी जान बचानेके लिए मैंने काँपते हुए कहा – "प्रस्तुत हूँ, पर कृपया दूरसे बात करें। मैं वनस्पति घीपर पला हुआ कागजी लेखक हूँ। और हाँ, आप सब पहले सीनियरटीके हिसाबसे क्यू बना लें ताकि एक-एकसे शान्तिपूर्वक बात की जा सके।" तभी जमघटसे एक साथ सुरीली और मोटी आवाज़ें उठीं : "क्या कहा ?" और मुझे अपनी भूल समझमें आ गयी, मैंने कहा : "क्षमा करें देवियो, मेरा मतलब क्रम और रेखासे था यानी रेखा-क्रमसे, पहला पहले और बादका बादमें। इसको मेरे युगमें सीनियरटी अथवा क्यू कहते हैं। यह कल्पना विदेशी होनेके कारण मैं इसका अनुवाद हिन्दीमें नहीं कर सका, क्षमा करें, अब यों समझिए क्रममें सीतादेवी सबसे पहले आती हैं उनके बाद वसन्तसेना, वासवदत्ता आदि। इसी क्रमसे आप लोग बैठ जायें। हाँ, तो सबसे पहले मैं देवी सीताको प्रणाम करता हूँ। आपको क्या कहना है देवि ?"

"वत्स, वाल्मीकि ऋषिने जो मेरा चरित्र-चित्रण किया है, वह भारतीय नारीके आदर्शके अनुरूप ही है, पर इस आदर्शपालनके लिए जो मेरे

'मनमें संघर्ष चलता रहा उसका उल्लेख न कर कविने चित्रका केवल एक ही पहलू उपस्थित किया है, जो न्यायोचित नही है।" "कविकी सीता देवी सीता होकर भी मानवीके रूपमें ही प्रस्तुत हुई है अतः उसमे मानव-सुलभ गुणोंके अस्तित्वको अस्वीकार नही किया जा सकता। मानवकी दुर्वलताओं-पर जय पाना दूसरी बात है। मुझे केवल इतना ही कहना है, कल्याण हो।"

"और मैं शूद्रककी वसन्तसेना हूँ यानी 'मृच्छकटिक' की वसन्तसेना। नाटककारने मुझे राजनर्तकीके रूपमें प्रस्तुत किया है। नारी-हृदयके पवित्र प्रेमकी मैं प्रतीक हूँ, पर मैं वेश्या-कुलकी कन्या हूँ। मैं पूछती हूँ नारी-हृदयके पवित्र प्रेमको दिखानेके लिए मुझे वेश्या कन्या और राजनर्तकी ही क्यो वनाया गया? क्या यह पुरुप नाटककारकी लेखनीकी कमी नही है? पवित्र प्रेमको स्थापनाके लिए उसने परिस्थितिसे ही क्यों लाभ उठाया?" "इसलिए वासन्तीजी, कि परिस्थितिकी पार्श्वभूमिमे आपका चरित्र और भी चमक उठे।"

"देखिए लेखक महोदय, मुझे इस चमककी आवश्यकता नही थी। मेरा व्यक्तित्व उज्ज्वल था और प्रेम पवित्र। सच तो यह है कि उसे व्यक्त करनेके लिए जो माध्यम नाटककारने लिखा है उससे मेरे चरित्रमें ज़रा भी फ़र्क नही पडता। और मैं कहती हूँ, तुम पुरुष नारीके विपयमें हमेशा प्रेमकी ही वातें क्यों किया करते हो? क्या यह तुम लोगोकी अतृप्त वासनाओकी तुष्टि नही है?" इतना कहकर वसन्तसेनाने तुनककर सला-इयोको ऊनके गोलेमें गुस्सेसे ठूँसा और चल दी। मैंने निःश्वास छोड़कर सामने देखा तो वासवदत्ता खडी थी। "मैं रानी वासवदत्ता हूँ" मेरी आँखोसे आँखें मिलाते हुए उसने कहा। "पति-परायणा, पतिके सुखको ही मैंने हमेशा अपना सुख माना। पर राजाका दूसरा विवाह कर लेना क्या उचित था? क्या आप समझते है उससे मेरी आत्मा विद्रोह नही कर उठी होगी? पर भास तो पुरुप थे न। वे मेरी वास्तविक भाव-

नाओको कैसे समझ सकते थे ? पति-परायणताकी दुहाई देकर अपने कर्त्तव्य-से मुक्त हो गये और समझ लिया कि नारी जातिपर उन्होने बहुत बड़ा उपकार कर दिया है।" "ठीक कहा, बहन तुमने" बीचमें ही एक दूसरी आवाज़ आयी और मैंने एक अत्यन्त लावण्यमयी छायाको अपने सम्मुख देखा। मुझे समझते देर न लगी कि यही कालिदासकी शकुन्तला है। "तुम्ही वह कालिदास हो न ?" उसने कड़ककर कहा। "नही, देवि, ऐसा अन्धेर न करो। कालिदास संस्कृतके कवि थे, महान् थे। मै तो हिन्दी-का नाचीज़ लेखक हूँ। उसके पैरकी धूल भी नही।" मै घिघियाया। "यह सब मै नही जानती। कालिदास न सही पर पुरुष लेखक होनेके नाते तुम भी उसी थैलीके चट्टे-बट्टे हो। तुमने दुष्यन्तके हाथो विस्मृतिके नाम मेरा अपमान कराया और उसकी स्मृति लौटते ही मुझे उसके अर्पण भी कर दिया। मेरा वस चलता तो मै दुष्यन्तकी ओर फूटी आँखसे न देखती। पर तुम पुरुष समझते हो, नारी केवल अर्पण ही जानती है। धिक्कार है तुम्हे और तुम्हारे साहित्यको।" इतना कहकर वह छाया अस्पष्ट होने लगी और उसके स्थानपर एक और मूर्ति उभरने लगी। मैंने गौरसे देखा तो साक्षात् तुलसीदासकी सीता। मैंने उठकर नमस्कार किया और वन्दना गाने ही वाला था कि उन्होने कहा, "देखो लेखक, इस शिष्टाचारकी आवश्यकता नही। अभी-अभी तुम मेरा पूर्व रूप देख चुके हो। वाल्मीकिकी सीता और मै वस्तुतः दोनो एक ही सीताकी प्रतिकृतियाँ है। ऐसी दशामें मुझे ग्रामीण क्यो दिखाया गया ? क्या मै सर्वथा सामर्थ्य-हीन थी ? पर मेरा चरित्र-चित्रण करनेवाले थे रामके भक्त-प्रवर। मैं तो केवल रामकी अर्धांगिनी होनेके कारण ही पूज्य समझी गयी।" मै नतमस्तक होकर अपराधी-सा सुन रहा था तभी किसीके खाँसनेकी आवाज़ आयी और मैंने सुना—"मैं राधा हूँ। सीताका ही दूसरा रूप। फिर क्यों मुझे एक सामान्य नायिकाके रूपमें प्रस्तुत किया गया ? एक ओर तुम लोग मुझे पुरुषकी प्रकृति या ईश्वरकी माया मानकर पूजनीय मानते हो और

दूसरी ओर एक साधारण मानवीकी भाँति उत्तान श्रृंगारकी मूर्तिके रूपमे भी प्रस्तुत करते हो। क्या ऐसा करके जाने या अनजाने तुम लोगोंने अपनी अतृप्त वासनाओंको तृप्त नहीं किया।" मैं चुपचाप सुन रहा था और छायाएँ बदल रही थी। अब प्रसादकी श्रद्धा मेरे सामने खड़ी कह रही थी—"मैंने मनुको सम्बल दिया, पत्नीका प्रेम दिया, माताका वात्सल्य दिया और पाया क्या ? ताप, विडम्बना, अशान्ति, प्रवंचना। मनुको अपनानेमे ही मेरे चरित्रका आदर्श दिखाया गया है। मै नही समझती यह आदर्श यथार्थकी भूमिपर खडा है। नारीकी उदारताकी दुहाई देकर पुरुषकी दुर्वलताओंपर आवरण डालनेका ही क्या यह एक सुन्दर प्रकार नही है ?" मैंने श्रद्धासे आँखें झुका दी। अबकी बार मेरे सामने गुप्तकी यशोधरा खडी थी। उसे देखते ही मेरे मुँहसे निकल पडा "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचलमें है दूध और आँखोमें पानी।"

"ठीक इसी पक्तिपर मुझे भी कहना है" उसने आँखोका पानी पोंछते हुए कहा "नारीको यह अवस्था गुप्तके युगकी विशेषता हो सकती है पर जिस युगमे मेरा जन्म हुआ था उस युगसे यह अवस्था कदापि मेल नहीं खाती। क्या यह औचित्य है ?" "ठीक तो है" जैनेन्द्रकी सुनीताने आगे आते हुए कहा "मुझे ही देख लीजिए। मेरे निर्माणमे लेखकने इस औचित्यका जरूर ख़याल रखा है पर पतिकी इच्छाके लिए जो कार्य उसने मुझसे करवाया वह नारीकी मर्यादाके विरुद्ध है। मै स्वतन्त्र होती तो सबसे पहले ऐसी सलाह देनेवाले अपने पतिकी ही खबर लेती।" क्रोधसे उसका चेहरा तमतमाया और विलीन हो गया।

अबकी बार जो महिला आयी उसके बाल कटे हुए थे। ओठ लिपस्टिकसे रंगे थे, आँखोमें बुद्धिकी चमक थी। ऐसा लग रहा था मानो अमरीकी नारी भारतीय वेश धरकर आयी हो। "हाउ डू यू ? मैं रेखा हूँ, 'नदीके द्वीप' की रेखा" कहकर उसने तपाकसे मुझसे हाथ मिलाया और चटसे पासवाली कुरसीपर बैठ गयी। "नाउ लुक" उसने

कहना आरम्भ किया, "मेरे साथ सबसे अधिक अन्याय हुआ है। संस्कारोसे मै अवश्य भारतीय हूँ पर विचारोमे विदेशी। इसलिए परम्परा-के बन्धन मुझे नही सुहाते। सौन्दर्य और यौवन आरम्भसे ही नारीके लिए अभिशाप सिद्ध हुए है। मै इनका उपयोग वरदानके रूपमे देखना चाहती हूँ। यही कारण है कि अपने प्रियतमसे सन्तान पाकर भी मैंने उससे विवाह नही किया। यहाँतक लेखकने मुझे ठीक समझा है पर मुझमे जो और है वह अंकित करनेसे लेखक कतरा गया है। मै उन्मुक्त वातावरण चाहती हूँ। तितली हूँ, फूलोका रस पीकर उड़ जाना चाहती हूँ। मेरे विचारोमे यही नारी-जीवनकी सार्थकता है। समझते हो न ?" उसने कहा और एक अर्थपूर्ण मुसकान उसके होठोपर खेलने लगी। उसकी लीलामयी आँखोमें आँखें डाले मै देखता रहा और मुझे लगा जैसे इन आँखोसे मै परिचित हूँ। तनिक अधिक ध्यानसे देखा तो स्वयं मेरी श्रीमतीजी आँखें फाडे हुए मुझे निगल जानेवाले पोजमे खडी थी। मै सकपका गया। "तो आप है ?" मै झेंप मिटानेके लिए हकलाया। "जी।" "अभी किससे आँखें मिलायी जा रही थी ?" उसने कडककर कहा। "यो ही देख रहा था। अच्छा सुनो, तुम्हें भी लेखकोके बारेमे कुछ कहना है ?"

"भाडमें गये तुम्हारे लेखक और तुम" और मुझे लगा मानो किसीने जोरसे मेरा कन्धा पकडकर मुझे झकझोर दिया हो। देखा तो मै चारपाई-पर लेटा हुआ था। रजाई नीचे जमीनपर पड़ी थी और श्रीमती न जाने क्या-क्या बड़बड़ाती हुई मेरा कन्धा पकड़कर मुझे झकझोर रही थी। यह उपसंहार मेरे लिए नया नही था।



शर्मा़जी : एक अध्ययन

आपने आदमी देखे होंगे। घबराइए नहीं, मेरा कथन नामाकूल नही है, सभी आदमी आदमी कहलानेके अधिकारी हैं यह माननेपर भी सभी आदमी आदमी होते तो 'अहमक', 'उल्लू', 'गधा' आदिकी गिनती आदम-जातमें क्यों होती? जिस प्रकार सभी नारियाँ (पुरुषकी नाड़ियाँ?) नारियाँ होनेपर भी उन्हें चाँदनी चौककी पटरीपर भाव-भंगीसे चाटके पत्ते चाटते हुए देखकर उनके कर्णकटु शब्द और वेढंगे व्यवहारसे नारीके बारेमें आपकी सुकोमल धारणाएँ एकदम पराजित होकर आपका जी ख़राब होने लगे और आप उन्हें साक्षात् त्रिजटाकी द्विजटा शिष्य-परम्परा समझ बैठें तो वह आपकी समझकी भूल नही, वरन् प्रौढ मस्तिष्क और सुरुचिकी द्योतक है। शायद ऐसी ही परिस्थितिमें डूब-उतरकर ससारके महान् कलाकार शॉने एक वार कहा था कि संसारमें दसमें-से नौ आदमी मूर्ख है। पर मैं इतनी सच्ची बात नही कह सकता, क्योंकि हो सकता है आप और मैं भी उन नौमें-से हो। चकित होनेकी बात नही, आँखें मल-कर देखिए और आँखें मलकर देखनेमें रातको श्रीमतीजी-द्वारा प्यारसे लगाया हुआ काजल पुछ जाये या घसीटामलके इकलौते मुन्नेकी भाँति 'फैल जायें' तो भी हर्ज नही, लेकिन देखते समय अपने अण्डेसे गोल सिर और अखरोट-जैसे संकुचित मस्तिष्कमें-से पड़ोसीके प्रति दुश्मनी, बीवीके प्रति खीझ, बच्चोपर क्रोध, ससुरालवालोसे नूतनतम संस्करण बनाम लल्लूलाल या फतेसिंह (जो कुछ भी ग्रहोके अनुसार रामनामधारी

पण्डितजीने नाम रख दिया हो) के जन्मपर कुछ गानेका लालच, फटे जूतेकी मरम्मत, कपडोकी घुलाई देनेकी चिन्ता और अमुक मित्रकी बीवीकी लुभावनी सूरत और अपनी फूहड़ स्त्रीकी धरना दिये बैठे बेबुलाये मेहमान-सी तसवीर, मस्तिष्कसे निकालकर शान्त दिमाग और साफ नज़रसे अपने चारों ओर दुनियाका मुलाहिजा फ़रमाइए, तब शायद आप भी शॉके कथनसे सहमते होगे, क्योकि संसारका जो चित्र आप खीचेंगे उसे देखते ही आपको कोई 'जू' याद आये बिना नही रह सकता, न आये तो समझ लीजिए कि अभी आपके दिमागसे बीवीकी कल रात की हुई फरमाइश और अफसरकी सुबह दी हुई झाडका खुमार अभी नही उतरा है।

नाना प्रकारके पशुओका वह संसार आपके समक्ष मानवीय संसारसे किसी भी भाँति कम नही होगा। उसमें आपकी साली और पत्नीका अन्तर भले ही हो। जिस प्रकार 'जू'के भिन्न-भिन्न प्रकारके जीव-जन्तुओ-को देखकर आप उस महान् कर्ताको याद करते हैं, उसी प्रकार संसारमें विचरण करनेवाले इन द्विपादियोंको देखकर भी आप एकदम उस गोपी-वल्लभ कृष्ण या रावणसे अपनी पत्नी छीननेवाले रामको याद कर बैठेंगे। सच जानिए मनुष्य-मात्रकी समानतामे पायी जानेवाली असमानता देखकर आप यकीनन सोचेंगे माने आप स्वयं भी किसी 'जू'के जन्तु हो, किसीकी हब्शी-जैसी सूरत, किसीकी धोबीके गट्ठर-जैसी तोद, किसीको चालीसगजी सलवार तो किसीकी धोती निरन्तर ऊपर उठायी जानेके कारण कोई अपरिचित आया जान दरवाज़ेकी ओटसे झाँकती हुई लालाकी ललाइनकी भाँति, झाँकती हुई रान, तंगीको कोसती-सी किसी जैण्टलमैनकी ओछी पतलून, तो कसमस-कसमस करती हुई साटनकी मज़बूतीको परखती स्नो-पाउडर और लिपस्टिकसे पुती किसी छबीलीकी मुंहज़ोर जवानी, तो किसीकी हिमालयकी तराईके जंगलों-सी बेरोक-टोक बढी हुई मूंछें (जिनके नीचे, मुंहका अस्तित्व जो प्रायः संसारकी माँ-बहनोसे रिश्ता

जोड़ता-जुड़वाता हो), किसीकी विना प्रयत्नके उगी हुई दाढ़ीपर पालतू बटेरकी भाँति हाथ फेरना, तो किसीको, सिरके बाल एकदम हवा हो जानेके कारण चिन्तित देखकर यकीनन आप 'अली बाबा चालीस चोर' वाली कहानीकी कल्पनामे खो जायेंगे, ऐसी दशामें आपकी अन्तश्चेतना अधिक सजग हुई तो अतीतमे देखी हुई कुछ शक्लें आपको याद आ जायेंगी जिनमे किसी नाजनीनकी, चुनावके लिए खड़े किसी उम्मीदवारके निरन्तर तकाज़े-सी याद या कभी बीवीसे भूले-भटके प्यार किये जानेपर रोमांचित हो जानेकी अवस्था भी हो सकती है और हो सकता है कि आपके मस्तिष्कमें जो चित्रपट चले उसमे कुछ 'टाइप' अपना विज्ञापन करते-से प्रतीत हो।

ऐसे टाइपपर गौर करते समय यकीनन कोई छड़ीधारी, दुबला-मोटा, ठिगना-लम्बा, गोरा-साँवला, मोटी फ़्रेमवाला काला चश्मा लगाये, धोती हाथमें उठाये, जाँघ चमकाता हीरो-सा व्यक्तित्व 'टाइपों' की भीड़को एक ओर ठेलता सामने आ जायेगा, जिसे देखकर आपकी तुलना-शक्ति घरमें बच्चा पैदा होनेपर नाचनेके लिए आयी हुई 'आदमी न औरत' वाली क़ौमसे एकदम तारतम्य जोड़ बैठेगी और इस तुलनाके साथ यदि उस व्यक्तिकी छड़ी जबरदस्ती ढोलका स्थान लेती-सी प्रतीत होने लगे तो आप उस छड़ीके साथ रुखाई न कीजिए; क्योंकि जिस प्रकार नृत्य-मण्डलीके लिए ढोल जरूरी है, बूढे परदादाके अस्तित्वके लिए परदादीका जिन्दा रहना आवश्यक है और घरमें पत्नी होते हुए भी बाहर एक प्रेमिकाका होना अनिवार्य है, उसी प्रकार उसके व्यक्तित्वकी पूर्णताके लिए उसकी छड़ी जरूरी हो सकती है, क्योंकि शायद उसका आधार, उसकी पहुँच और मैदानमें अधिक समय तक खड़ा रहना पड़े तो उसकी पूँछ वह एकमात्र छड़ी ही है। जिस प्रकार सलवार पहननेवालीका आधार चुन्नी है (जो नाक पोछनेसे लेकर साग-तरकारी बाँधने तकका काम देती है)। जिस प्रकार बाबूका आधार कलम है, लालाका डण्डी और एक हिन्दू नारीका

आधार और अधिकार पति और भाग्यको कोसना है, उसी प्रकार उसका आगा-पीछा उसकी सीधी वक्र छडी हो सकती है। यदि आप जानना चाहें कि उन छडे महाशयका (पंजाबी भाषामे 'छडा' कुँवारेको कहते है) गठबन्धन छडीसे कब और क्यो हुआ तो उन्हींसे पूछ देखिए। वे रुक-रुककर हँसेंगे और आपको यकीन हो जायेगा कि दिल्ली ट्रान्सपोर्ट सर्विसकी किसी बसका इंजन 'आन' कर दिया गया है या कोई कबूतरी फडफडाती उडनेका प्रयत्न कर रही है।

ऐसे ही एक 'टाइप'से परिचित होनेका सौभाग्य मुझे भी प्राप्त है। उसका नाम कुछ भी हो, पर सुविधाके लिए मैं उसे शर्माजी कहूँगा, क्योकि इस नाममे पुरातनता, स्त्रीलिंग-पुल्लिगका आभास और शर्मका आह्वान (शर्म आ) और 'जी-जी' या 'हाँजी-हाँजी'का जी, सब-कुछ एक साथ है। मेरी इस रुचि-सुविधाके लिए 'शर्मा' नामवाले सभी सज्जन उदार हृदयसे मुझे क्षमा करेंगे।

शर्माजीसे अपना परिचय होनेकी बात कहूँ तो जिस प्रकार दीवालों-पर लगे चुनावके लिए खड़े किसी उम्मीदवारके पोस्टर या किसी हिन्दी मासिक पारिवारिक पत्रिकामें निरन्तर छपनेवाले 'बाँझ भी पुत्रवती हो सकती है' विज्ञापन बार-बार दिखाई पड़नेके कारण न चाहनेपर भी आप उनसे परिचित हो जाते है उसी प्रकार छडी-विहीन शर्माजीसे मेरा परिचय हुआ। छड़ी तो उनके व्यक्तित्वमे पीछेसे आयी। काफी खोजके बाद पता चला कि जिस समय दूसरी बीवी-सी टेढी छडी शर्मा-जी लाये उस ससय वे धर्माजी न थे यानी किसी धार्मिक सस्थामें उनकी टाँग नही फँसी थी। इसीलिए जब सर्वप्रथम अपने नामके पासपोर्टसे शर्मा-जी धार्मिक संस्थामें घुसे तब उन्हे छडे न होनेपर भी एकदम छडीकी आवश्यकता महसूस हुई, क्योकि उन्हे उसके लिंग और गुण दोनोकी ज़रूरत थी – रसकी निष्पत्ति ही होती है।

शर्माजी तथाकथित अध्ययनशील व्यक्ति होनेके कारण उन्होने आज-

कलकी 'लाजियों' पर काफी सिर खुजाया था और अन्तमें अपनी साइकिलसे मिलती-जुलती साइकालॉजीके आधारपर वे इस बातके कायल हो गये थे कि व्यक्ति भले ही एक हो, उसके व्यक्तित्व असंख्य होते हैं। दूसरे शब्दोंमें वे गिरगिटीय-सम्प्रदायी थे। इस फ़ार्मूलेको किस प्रकार वे अपने जीवनपर घटित करते आये हैं इसकी चर्चा सिलसिलेवार आगे की गयी है।

स्वतन्त्रतासे पूर्व शर्माजीका साहबी व्यक्तित्व

स्वतन्त्रता मिलनेके पूर्व शर्माजी एड़ीसे सिर तक (चोटीके अभावमें चोटी तक कहना असंगत होगा) दिन-रात पूर्णरूपेण विलायती थे। हिन्दीको वे देहाती भाषा समझते थे, क्योंकि जिस 'इसकूल' (स्कूल ऑफ् थॉट) के वे समर्थक थे उसमें हिन्दवीपनके लिए गुंजाइश न थी, अतः अँगरेज़ी बाना पहने शर्माजीने गोरे साहबको ख़ुश करनेके लिए अपनेको 'शरमन्' कहा और कहलवाना शुरू कर दिया था। तब उन्हें 'इसट्राइक' भी न हुआ था कि वे इलाहाबादके निकट एक देहातके तिलकधारी पण्डितजीके कुलदीपक हैं। उन्हें स्वतन्त्रता-संग्रामका भी कटु आलोचक होना जरूरी था, क्योंकि समद्रष्टा होनेके कारण 'स्व' और 'पर'में वे कोई भेद न कर पाते थे। 'संग्राम'में भी ग्राम विचारणीय आन्दोलन हो सकता था, पर 'ग्राम्या' वे देख ही चुके थे, इसीलिए सन् '४२ के आन्दोलनके समय जब राज-मार्गोंपर पिकेटिंग शुरू हुआ, गोली चलने लगी और 'दफ़्तर न जाओ' का नारा लगाते हुए छोटे-छोटे बालक मार्ग रोके सड़कोंपर लेट गये तो 'शरमन्' साहब पिछले दरवाज़ेसे लुकते-छिपते साहबको सलाम करने सबसे पहले पहुँच गये।

धार्मिक-संस्थामें शर्माजीका धार्मिक व्यक्तित्व

आज़ादी मिलते ही हवाई अड्डेपर बिदाईके समय साहबसे (जीवनमें प्रथम बार) हस्तान्दोलन करके शर्माजी लौटे तो दुम उठाये स्वतन्त्रताका

जयघोष करते हुए। दूसरे ही दिन कोट-पतलून, हैट आदि सब काफूर हो गये, पर 'सरमन्'की यादगार लोगोंके मस्तिष्कमें अभी ताजा होनेके कारण शर्माजीके सामने कठिनाई उपस्थित हुई। इसलिए उन्होंने धर्मका आश्रय लेना उचित समझा, रातों-रात वे परदेशीसे देशी बन गये। 'रामचरित-मानस'में भारतीय संस्कृति देखने लगे, मीराके पदोंकी माधुरीके कायल हुए और सूरके काव्यकी गेयताका उपयोग उन्होंने दिल खोलकर किया और कराया। आज भी किसी कीर्तनमें चले जाइए, तिलकधारी शर्माजीकी श्रीमूर्तिके दर्शन वहाँ आपको अवश्य होंगे। शर्माजी जब किसी धार्मिक विषयपर बोलते हैं तो उनके भाषणका आरम्भ 'जब मैं काशीमें था ....'से होता है। उनका अटूट विश्वास है कि भारतवर्षमें धर्मका प्रचार काशी-इलाहाबादसे हुआ है।

साहित्यिक संस्थामें शर्माजीका साहित्यिक व्यक्तित्व

दूरद्रष्टा शर्माजी जानते थे कि 'कैरियर' की सफलताके लिए अवसर-वाद बहुत ज़रूरी है, इसलिए जब हिन्दी राष्ट्रभाषा हुई तो सुअवसर समझकर शर्माजी हिन्दीकी दुहाई देते राम-नामका दुपट्टा फेंक पैजामा-कुरता और जवाहर वास्कटका साहित्यिक चोगा पहनकर हिन्दी-मैदानमे उतर आये। क्योकि यह सच है कि उन्होने हिन्दीमें कुछ न लिखा था परन्तु 'तोता मैना', 'सुखसागर', 'चन्द्रकान्ता सन्तति' और 'बैताल पचीसी' उन्होंने कई बार पढी थी और 'मानस' की चौपाइयाँ कीर्तनमें सुन-सुनकर याद हो ही गयी थी। येन-केन प्रकारेण कुछ हिन्दी लेखकोके नाम भी वे जान गये थे और रहनेवाले थे इलाहाबादके, जहाँका बच्चा भी छन्दमे ही रोता-हँसता है, फिर भला किसकी हिम्मत जो उनकी साहित्यिकता और हिन्दवीपनमें मीन-मेख निकाले। साहित्यिक मंचसे बोलते समय वे अस्पष्ट (स्पष्ट) रूपसे कहा करते हैं, 'जब मैं इलाहाबादमें था तो मुझे शुकलजी (शुक्लजी) से मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। (वे शुक्लजीको

इलाहावादी समझकर गौरवान्वित हुआ करते है) तव मैंने 'अस्पष्ट' रूपसे उनसे कह दिया था कि हिन्दीमें नपुंसक लिंगका न होना व्यवहारकी दृष्टिसे एक बहुत भारी कमज़ोरी है। (यह वात उन्होने किसी अहिन्दी भाषीसे सुन रखी थी) वाबू श्यामसुन्दर दाससे रेलगाडीमें मुलाक़ातके दौरानमे मैंने कहा था कि आधुनिक साहित्य बहुत अस्पष्ट है, अतः लेखकोको चाहिए कि वातको खोलकर लिखा करें....' आधुनिक वादोपर विचार करते हुए वे जीवनमे प्रयोगवादी होते हुए भी प्रयोगवादको लेखकोकी वक्रवाद और छायावादको (वादसे छायाका संयोग होनेके कारण) श्रेय मानते है। प्रगतिवादको तो वे निरी 'मजूरी' वकवक समझते है।

रेडियोमें शर्माजीका कलात्मक व्यक्तित्व

वड़े-वड़े 'साहित्यको' (साहित्यिकों) से परोक्ष-अपरोक्ष नाता जोड़कर भी जव शर्माजीकी साहित्यिक क्षेत्रमे दाल न गली तो उन्होंने रेडियोकी राह पकडी। औरोंकी सूझ-वूझ और निजी पूछ-ताछसे उन्हें पता चला कि रेडियोमें देहाती 'प्लोग्राम' चल पडे है। फिर क्या था ? शर्माजी देहाती तो थे ही, तत्काल खड़ी वोलीको तिलांजलि देकर 'पुरवैया' पर अपना जन्मसिद्ध अधिकार जताने लगे; लेकिन फिर भी विना जरियेके जव कोई ज़रिया न वचा और एक रेडियो आर्टिस्टके नाते उनकी सुमधुर वाणीका प्रसारण न हो पाया तो उन्होने राष्ट्रभापाकी सेवाके नामपर एक अनोखी स्कीम निकाली; जिसकी कुछ धाराएँ है :

१. उत्तर भारतीय 'ग्राम्य भापाओं'की गणना खड़ी वोलीके अन्तर्गत हो।
२. देवनागरीमें लिखी जानेवाली सारी भापाएँ हिन्दी ही मानी जायें, तथा वे अपनी गतिविधि-सम्वन्धी निर्देश हिन्दीसे लिया करें।
३. संस्कृत और हिन्दीकी एक लिपि होनेके कारण 'संस्कृत' हिन्दीका ही आदि रूप मान लिया जाये।

४. प्रत्येक अहिन्दी भाषीको एक उत्तर भारतीय देहाती भाषा पढना अनिवार्य किया जाये।

५. भारतके समस्त पुस्तकालयोंसे अँगरेज़ीकी पुस्तकें एकदम हटा दी जायें।

६. हिन्दीमें अहिन्दी भाषियोंका साहित्यिक प्रवेश तत्काल रोक दिया जाये, इत्यादि इत्यादि।

हिन्दीके प्रति शर्माजीमें इतना अखण्ड प्रेम यों अकस्मात् पैदा होनेके कारण उनके विचारो-सा ही गूढ बना हुआ था। अब जाकर कही पता लगा है कि वे कोई हिन्दी 'जाब'के लिए प्रयत्नशील हैं। उसे पाते ही हिन्दीको उनकी ठेकेदारीका जो हाल होगा उसकी कल्पना आप ही करें।



कुत्तेकी दुम

आप भी कहेंगे विषय भी चुना तो 'कुत्तेकी दुम'। जैसे और कोई विषय ही न था। लिखना ही था तो किसी रंगीन विषयपर लिखते। कोई चटपटा या गुदगुदानेवाला विषय नहीं था तो न लिखते। यदि आप ऐसा कहें तो ज्यादती नहीं होगी क्योंकि मुझे डॉक्टरने नहीं बताया है कि मैं लिखूँ और आप हैं मुतवातिर लिखनेके आदी क्योंकि लिखना आजकलका एक फैशन है और फिर लिखनेके लिए अब पढ़नेकी भी जरूरत नहीं रही। मैट्रिक पास करते-न-करते लिखने लगे, या संवाददाता बन बैठे। चार पूँछवाले लेखकोंकी पूँछ सहलायी कि आप भी पूँछवाले बन गये। पर मेरी बात थोड़ी भिन्न है। एक तो इसलिए कि मैं शुरूसे ही पूँछवालोंकी दुनियासे एकदम अलग रहा हूँ और दूसरे यह कि मैं लिखनेके अपने अधिकारके प्रति इतना जागरूक नहीं रहा हूँ जितने जागरूक आप और मेरी श्रीमतीजी हैं। विश्वास न हो तो मेरे घरकी दीवारोंको देख लीजिए। कहीं धोबीके कपड़े लिखे हुए हैं और कहीं सामानकी तालिका अंकित है; कहीं दूधवालेका हिसाब है तो कहीं रसोईका जमा-खर्च। और फिर मैं शुरूसे समझता आ रहा हूँ कि लिखना एक कला है और मैं कलाकार नहीं हूँ। लटकेदार बातें मुझे नहीं आतीं, मुट्ठियाँ भींचकर आल्हा-ऊदलके जोशमें लिखना नहीं आता, लिखते समय प्रकट शब्दोंमें एक और व्यंग्यसे दूसरी बात करना नहीं जानता, इसी प्रकार लिखते हुए भी कुछ मतलबका न लिखनेका भी मैं अभ्यस्त नहीं हूँ। यही कारण है कि मैं

लिखनेसे हमेशा बचता रहा हूँ। बीस वर्ष पूर्व विवाहसे पहले मैं अवश्य लिखनेके प्रयोग किया करता था पर फिर भी प्रयोगवादी न बन सका क्योंकि दोस्त तो दूर मेरे प्रयोगोंको लेकर वाद-विवाद करनेके लिए भाडे-पर भी कभी कोई नहीं मिला। विवाह हुआ, श्रीमतीजीसे मुलाकात हुई और मेरे व्यक्तित्वको नया मोड मिला यानी लिखनेकी ड्यूटीका चार्ज उन्होने तत्काल सँभाल लिया। सुबह विवाह हुआ और दोपहरसे उन्होने खर्चा लिखना शुरू कर दिया।

श्रीमतीजीकी अनुपस्थितिमें आज लिखने बैठा हूँ तो 'कुत्तेकी दुम'को छोडकर दूसरा कोई भी विषय ही नही दिखाई देता। आप इसे मामूली विषय न समझें। कुत्ता जरूर छोटा-सा जानवर है पर उसकी दुममें मनुष्य-स्वभावका बहुत बडा सत्य छिपा है। यह सच है कि इस सत्यका अनुभव करके जिस-किसीने उसका उद्घाटन 'कुत्तेकी दुम' मुहावरेमे किया होगा, वह अमरीका नही हो आया था, 'भारतीय साहित्यमें कुत्ता और उसकी दुम' विषयपर उसने डॉक्टरेट भी नही पायी थी और न वह कोई कुत्तोका विशेषज्ञ ही था। वह केवल कुत्तेकी दुमका प्रेमी था। और इस अनन्य प्रेमके कारण ही कुत्तेकी दुममे अपने दर्शन करके शायद उसने इस मुहावरे-को चालू किया होगा। आज इस मुहावरेके सत्यकी गहराईमें उतरता हूँ तो आनन्दसे गद्गद हो उठता हूँ। क्योकि एक ओर 'कुत्तेकी दुम' साहित्यिक मुहावरा है, दूसरी ओर मनुष्य और कुत्ता दोनोके स्वभावका द्योतक है और कुत्ता सर्वगामी और लोकके अधिक निकट होनेके कारण उसमे लोककथा और लोक-नृत्यका पुट भी सहज ही मिल जाता है। जो आजके युगकी एक विकट आवश्यकता है। 'कुत्तेकी दुम' मे निहित मुख्यतया दो गुण है। एक सर्वथा टेढा रहना और दूसरा कुत्तेका अपनी ही दुम पकडने-के लिए गोल-गोल घूमना। दुमके इन दोनो गुणोसे संसार अवगत है। पर यह ही गुण कुत्तेकी दुमकी सीमा नही है। अपने बीस वर्षीय अनुसन्धान और शोध कार्यके बलपर मैं कह सकता हूँ कि कुत्तेकी दुमका तीसरा गुण

है दाताको देखकर हिलना, चौथा गुण है अपनेसे वलिष्ठ दुमको देखते ही दव जाना और पाँचवा गुण है अपनेसे कमजोर दुमका दर्शन होते ही अकड़कर और भी वक्र वन जाना। कुत्तेकी दुमकी इन विशेषताओंके सत्यकी जाँच करनेके लिए मुझे दूर नही जाना पडा। क्योकि घरमें नन्हीकी अम्मामे पहला और मेरे वरसेटाइल जीनियस मित्रमें शेष सभी गुण एक-सौ नये पैसे विद्यमान है जिनका रसास्वादन मै निरन्तर करनेके लिए मजवूर हूँ। मसलन हमारे घरमे एक चूर्णका डिव्वा है। चूर्णका फ़ार्मूला श्रीमतीजीकी अपनी खोज है और वे ही उसे हर महीने कूट-पीसकर तैयार करती है क्योकि मुझे अकसर वदहज़मीकी शिकायत रहती है और पेट खराव रहनेके कारण लगभग हर दूसरे दिन मुझे उनके सामने चूर्णके लिए हाथ फैलाना पडता है। जिस डिव्वेमें चूर्ण रखा जाता है वह मूलमें एक विलायती डिव्वा था पर गत वीस वर्षोसे निरन्तर चूर्ण रखे जानेके कारण 'चूर्णका डिव्वा' वन गया है। इन वीस वर्षोमे उसका रंग ही नही वदला, काया भी पलट गयी है। जंगसे परिपूर्ण तो है ही, साथ ही दादीके पोपले मुँहकी तरह कई जगह पिचक भी गया है। पर मेरे निरन्तर अनुरोध करनेपर भी चूर्णका डिव्वा नही वदला जाता। घरमें डिव्वोंकी कमी हो सो भी वात नही। कई विदेशी दूधके डिव्वे खाली पड़े है क्योकि मै और मेरे चार वच्चे शुरूसे ही डिव्वोंका दूध पीनेके आदी रहे है।

सोचता हूँ कि इन वीस सालोमे दुनिया क्यासे क्या हो गयी। जिन्होने अपना प्रान्त भी नही देखा था वे विदेश घूमकर देशीसे विदेशी हो गये, जो फिल्मी गानोकी तुकवन्दी किया करते थे आज माने हुए आलोचक वन गये, जो परचूनकी दूकानकी गद्दीपर वैठे डण्डी मारते समय हकलाया करते थे वे वैयक्तिक सहायकोकी योग्यताके सहारे कलाकार वन वैठे। हम दोनो छह हो गये। मै वाचालसे एकदम मौन वन गया। कई मकान वदले, कई कवाड़ी आये और गये, पर चूर्णका डिव्वा वहीका वही है। न वदलता है न खोता है। आखिर चूर्णके इस पुराने डिव्वेके

प्रति इतनी आसक्ति क्यों ? कभी-कभी सोचा करता था कि शायद श्रीमतीजीके मनमें डिब्बेके प्रति कोई विशेष भावना जमी हुई हो, पर सो भी बात नहीं है क्योकि भावनाओंसे वह उतनी ही दूर है जितनी दूर साहित्यको लेखककी मौलिक देन कूतनेसे आजके ९९ फ़ीसदी लब्धप्रतिष्ठ आलोचक, या वस्तुस्थितिके सत्यको लेकर नीर-क्षीर न्याय करनेसे विशेष संवाददाता। अपने एक स्नेही मित्रसे पूछते ही, जो अपनेको नारी-मनोविश्लेपणमे पटु कहा करते है तथा न माँगनेपर भी मित्रोंको 'फ्री एडवाइज' दिया करते है, वे श्रीमतीजीके चेतन मनमें घुसकर अचेतन मनकी जो वखिया उधेड़ने लगे तो भावी आशंकासे मै ऐसा घवराया कि घरपर आकर ही साँस ली। वे लम्वी-चौडी परिभापाओमें और क्लिष्ट शब्दोमें बहुत-कुछ कहते रहे पर अपने रामको तो एक ही तर्क जँचा और वह था कुत्तेकी दुमका न्याय।

इसी प्रकार दुमके शेष चारों गुणोंके दर्शन मुझे मेरे लेखक-मित्रमें हुए। मेरे मित्र वह है जो अपना नमूना नही रखते। नामको छोडिए, नामसे ठीक परिचय नही होता क्योकि नाम और गुणके परस्पर सम्वन्धकी अनिवार्यतापर शुरूसे ही कभी विचार नही हुआ। होता तो 'आँखके अन्धे, नाम नयनसुख' वाली कहावतसे हिन्दी साहित्यकी वृद्धि न होती और सभी लोगोका दोबारा नाम-सस्करण करना चालू 'फाइव ईयर प्लान' का अनिवार्य अंग वन जाता। आपके लिए इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि मेरे मित्र लिखते है और कसकर लिखते है। कोई भी पत्रिका आपसे अछूती नही वची। यानी वे लेखक है, कवि है और रिपोर्टर भी है। कुछ अपनी कलमसे लिखते है, कुछ कैंचीके सहारे, कुछ भाईचारेसे और कुछ पिक-पाॅकेटके ढंगसे। तात्पर्य यह कि वे शहदकी मक्खीकी लगनसे मैटर सचय किया करते है। उनके नाम दूसरोंकी दस किताबें छप चुकी हैं, जिनमें रुक्मिणी देवी छात्राका 'पाक-शास्त्र' है, अच्छे मियाँ 'प्रशंसक'का, उर्दू शाइरीकी हिन्दीको देन है, लक्ष्मीधर शास्त्री 'मेघदूत'के

पितामहकी लिखी हुई 'संस्कृत साहित्यका काव्य सौन्दर्य' नामक पोथी है, कामरेड सुखोपाध्यायका 'मार्क्स दर्शन' है, 'राष्ट्रभाषा सेवी गुडनेर', केरलके पिल्ले महाशयका 'हिन्दी शिक्षक' है और 'हिन्दी आलोचनाके ज्योतिर्दीप' हैं। (इस पुस्तकके स्रोतका अभीतक पता नही चला है।) वे ऊपरसे देशी और भीतरसे एकदम विदेशी हैं क्योंकि खादी भी पहनते है और विलायती वस्तुओंको भी कसकर इस्तेमाल करते हैं। वे छायावादी इसलिए है कि छायावादके कटु आलोचक होते हुए भी उनके तथाकथित लेखनमे केवल छाया-ही-छायाके दर्शन होते है। प्रयोगवादी तो वे स्वभावसे ही है क्योंकि साहित्य और भाव संचयनके लिए वे नित्य नये प्रयोग करते चले आ रहे है और वाद और प्रतिवाद ही उनकी शोहरतका राज है, उन्हे रहस्यवादी भी कहा जा सकता है क्योंकि उनके साहित्यिक पैंतरोंका रहस्य किसीको भी विदित नही। आपके व्यक्तित्वकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप हिन्दीमें किसी भी लेखकको अपना सानी नही मानते बल्कि अपने ही चारों ओर घूमते रहते है। संक्षेपमें आप वह दुम हैं जो सीधी वक्र होती है, दबती है, ऐंठती है और आप उसीके पीछे घूमते रहते है – चक्कर मारा करते है। यह हुई कुत्तेकी दुमके गुणोकी बात जब दुम अस्तित्वमे रहती हैं। पर कही-कही मालिकके हठधर्मी स्वभावके कारण दुम काट भी दी जाती है। ऐसी दशामें दुम न रहनेके कारण कुत्ता दुमकटा कहलाता है। पर मैं दुमकटोंकी या कटी दुमकी बात यहाँ नही कह रहा हूँ। उसकी बात फिर कभी करूँगा क्योंकि इस शब्दमे आजके युगका बहुत बड़ा सत्य पनप रहा है और मुझे पूरा विश्वास है कि लोगोका यही हाल रहा तो आगे चलकर हिन्दी साहित्य एक और मुहावरेसे विभूषित हो जायेगा। फिर लोग टटोलने लगें और कुत्तेकी दुमको अपनी नीतिक्षम समझने लगें तो बेशक समझें, समझते रहे।

■ ■ ■